सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

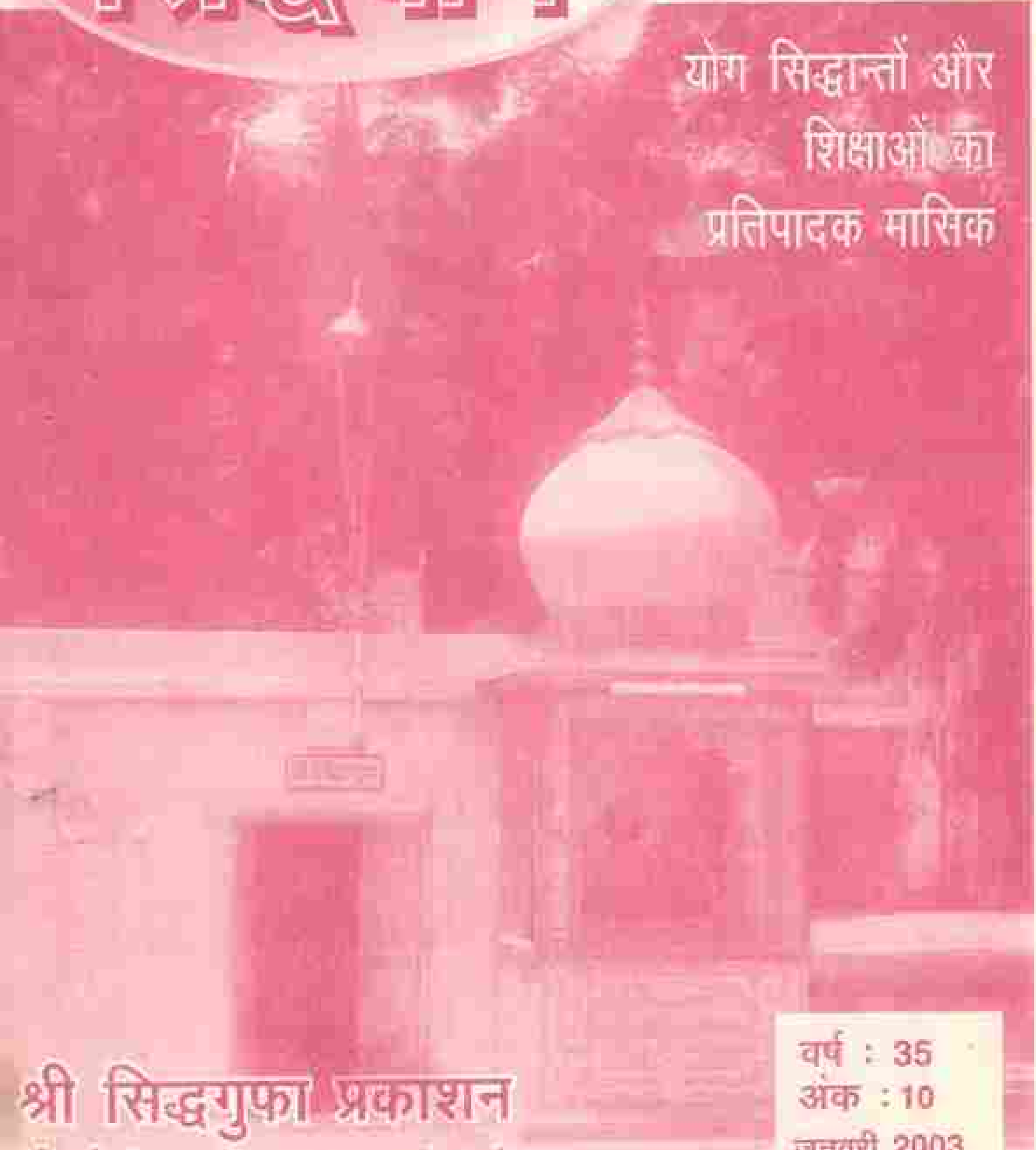

वर्ष : 35
अंक : 10
जनवरी 2003

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❒

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❒

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

❒

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

❒ अमृत कण 2
❒ दुर्लभो मानुषो जन्म (विशेष लेख) 3
❒ सम्पादकीय 10
❒ रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी.. 12
❒ सबसे न्यारा प्यारा तुम्हारा !
प्रो० मददेव झा 18
❒ चरणस्पर्श एवं चरणवन्दन का महत्व
डॉ० गयाप्रसाद शास्त्री 19
❒ प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्य की सुरक्षा
डॉ० नरेश झा 22
❒ गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे
विजय प्रकाश पालीवाल 25
❒ गुरुदेव भक्त के रूप में
डॉ० रुद्रदत्त चतुर्वेदी 26
❒ कानपुर में अष्टम् सिद्ध साधना शिविर सम्पन्न
प्रेमचन्द्र सविता........ 27
❒ योगी जीवन के वरणीय मानदण्ड
श्री 'दिव्य' 30
❒ संस्कार शक्ति व साधना-शक्ति (भाग-४)
कु० रुक्मिणी वर्मा 33

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 10

जनवरी
2003

ध्यायं ध्यायं यद्धि परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखविवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं पठतु विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अक्षरात् परतः परः

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः
सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो
ह्यक्षरात् परतः परः।।

(मुण्डकोपनिषद् २/१/२)

अर्थात्

वे दिव्य पुरुष परमात्मा निःसंदेह आकार रहित और समस्त जगत् के बाहर एवं भीतर भी परिपूर्ण हैं। वे जन्म आदि विकारों से रहित, सर्वथा विशुद्ध हैं; क्योंकि उनके न तो प्राण हैं, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही है। वे इन सबके बिना ही सब कुछ करने में समर्थ हैं; इसीलिये वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अविनाशी जीवात्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ—सर्वथा उत्तम हैं।।२।।

अमृत कण

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो
यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं
ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद ६/६)

जिनकी अचिन्त्यशक्ति के प्रभाव से यह प्रपञ्च रूप संसार निरन्तर घूम रहा है–प्रवाहरूप से सदा चलता रहता है, वे परमात्मा इस संसार वृक्ष, काल और आकृति आदि से सर्वथा अतीत और भिन्न हैं अर्थात् वे संसार से सर्वथा सम्बन्ध रहित, काल का भी ग्रास कर जाने वाले एवं आकार रहित हैं; तथापि वे धर्म की वृद्धि एवं पाप का नाश करने वाले, समस्त ऐश्वर्य के अधिपति और समस्त जगत के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं के आश्रित है, उन्हीं की सत्ता से टिका हुआ है। अन्तर्यामीरूप से वे हमारे हृदय में भी हैं। इस प्रकार उन्हें जानकर ज्ञानयोगी उन अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

* * *

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्त परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

(मुण्डकोपनिषद ३/२/८)

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना–अपना नाम–रूप छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम–रूप से रहित होकर परात्पर दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। सर्वतोभाव से उन्हीं में विलीन हो जाता है।

* * *

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।

श्रीमद्भगवद् गीता १८/३८

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है। वह पहले–भोगकाल में अमृत के तुल्य प्रतीत होने पर भी परिमाण में विष के तुल्य है, इसलिए वह सुख राजस कहा गया है।

विशेष लेख

दुर्लभो मानुषो जन्म

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! आज मैं तुम्हें समझाऊँगा कि मनुष्य जन्म दुर्लभ क्यों है ? सभी अनुभवी महात्माओं तथा शास्त्रों ने एकमत से इस बात को स्वीकारा है कि मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। एक बार मनुष्य शरीर छूट जाने पर दोबारा बहुत मुश्किल से मिलता है, इसका एक कारण है उसे समझो। गीता में भगवान ने बताया है—

'यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

अर्थात् मनुष्य जिन–जिन भावनाओं का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है उन्हीं–उन्हीं भावनाओं के अनुरूप योनियों को प्राप्त होता है। अनुभवी सन्तों का कथन है कि एक साधारण मनुष्य को मृत्यु के समय एक हजार बिच्छू के एक साथ काटे जाने के बराबर दुःख होता है। और जो पापात्मा है उसे दस हजार बिच्छू के काटे जाने का दुःख होता है। एक साधारण बिच्छू किसी को काट लेता है तो वह बुरी तरह तड़पने लगता है। हजारों बिच्छू एक साथ काटें उस दुःख की कल्पना ही कठिन है। आम तौर पर दुःख प्रधान मृत्यु हुआ करती है। मृत्यु के समय लोग उस मरने वाले से कहा करते हैं— भाई ! राम–राम कहो रे'। किन्तु उस घोर दुःख के समय उसे यह बात अच्छी नहीं लगती। उसके प्राण घुट रहे होते हैं। प्राण निकलते समय प्राणों का घर्षण होता है, अत्यधिक प्यास लगती है इसलिये लोग उसे दोवले से पानी पिलाया करते हैं। यदि प्यासा ही शरीर छूट जाता है तो देहपात के पश्चात् प्रेत–पिशाच आदि योनियों में चला जाता है। उसका मुख सुई की नोंक के बराबर छोटा होता है, पानी पी नहीं सकता। प्यास के मारे भटकता रहता है। उस शरीर को छोड़ने के बाद उस दुःख की स्मृति से युक्त होने के कारण पुनः उसी प्रकार के अत्यन्त कष्टप्रद योनियों को प्राप्त होता रहता है यही क्रम अनन्त जन्मों तक चलता रहता है। सिद्धान्त की बात यह रही कि देखना यह चाहिये कि अन्तिम समय किसी मनुष्य का भाव कैसा होता है लोग घुट–घुट कर ही मरते हैं कई अधोमार्ग से जाते हैं। कई–कई व्यक्तियों के प्राण निकलते ही नहीं हैं। एक जगह पर एक व्यक्ति के प्राण निकल नहीं रहे थे वहीं पास में एक योगी ब्रह्मचारी रहते थे, लोगों ने कहा—'महाराज ! इसके प्राण नहीं निकल रहे हैं'। योगी ने जाकर हाथ लगाया तुरन्त उसके प्राण निकल गये। लोग गोदान आदि कराते हैं ताकि प्राण आसानी से छूट जायें। महात्माओं के दर्शन कराते हैं। प्राणों का जब घर्षण

4 सिद्धयोग

होने लगता है तब कृष्ण याद नहीं आते, राम याद नहीं आते, गुरुदेव याद नहीं आते। घर्षण का जो दुःख होता है, उस दुःख की ही स्मृति रहती है। उस दुःख के कारण कुत्ता, बिल्ली आदि निम्न शरीरों में चले जाते हैं। सर्प–छिपकली आदि प्राणियों के पूँछ से प्राण जाते हैं इस प्रकार और निम्न योनियों में चलते चले जाते हैं। तड़फ–तड़फ कर शरीर छूटने से इन योनियों में शुभ चिन्तन होने की गुंजाईश ही नहीं रहती। स्वर्ग में भी कोई कर्म बनता नहीं है। ज्यादा आराम में साधना नहीं होती। मनुष्य दुःख से सताया हुआ जप करता है, तप करता है, ध्यान करता है। भगवान ने एक सिद्धान्त की बात कही है जो मैंने तुम्हें बताया है–

'यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्'।

साधारण लोकोक्ति भी है, अन्त मति-सी गति। अर्थात् अन्तिम समय जैसे विचार होते हैं वैसे ही उसकी गति हो जाया करती है। मैं एक उदाहरण देकर इस बात को समझाता हूं।

मेरे बड़े गुरु भाई थे ब्रह्म. गोपालानन्द जी। उनकी ध्यान की स्थिति बड़ी ऊँची थी। योगी में जब ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाता है, तो वह सत्य द्रष्टा बन जाता है। उसे जो भी अनुभव होते हैं वे सत्य ही होते हैं। ब्रह्म. गोपालानन्द जी ध्यान में ही रहस्य की बातें श्री प्रभु जी से पूछ लिया करते थे। एक बार उनकी यह जानने की इच्छा हुई कि उसकी माँ कहाँ है? ऐसा संकल्प आते ही उसे ध्यान में एक काली–काली सी तेरह–चौदह वर्ष की लड़की दिखाई दी, जो अपने हाथ में मछलियाँ पकड़ी हुई थी। श्री प्रभु जी ने ब्रह्म. गोपालानन्द जी से कहा यही तेरी माँ है। ब्रह्म. गोपालानन्द जी ने आश्चर्य से प्रभु जी से पूछा– प्रभु जी हम तो अग्रवाल वंश के सात्विक लोग हैं फिर इनकी यह गति कैसे ? इस पर श्री प्रभु जी ने कहा– तुम अपनी बहिन रुक्मिणी देवी से पूछना कि इनकी मृत्यु कैसे हुई थी ? ध्यान से उठने के बाद ब्रह्म. गोपालानन्द जी ने अपनी बहिन से पूछा कि माता जी की मृत्यु कैसे हुई थी ? रुक्मिणी देवी ने कहा– हमारी माता जी को पेट में बहुत दर्द था। उदराध्मान हो गया था। डाक्टरों ने कहा मछली का तेल पिलाने से यह ठीक हो जायेगी। चूँकि वह अग्रवाल परिवार में जन्मी थी शाकाहारी परिवार में पैदा होने के कारण वह मछली का तेल पीने को तैयार नहीं हुई। किन्तु जब कष्ट अत्यधिक बढ़ने लगा तो उन्होंने तेल पीने की इच्छा व्यक्त कर दी। एक व्यक्ति को तेल लाने के लिये भेजा गया। इसी बीच में मछली के तेल की भावना करते-करते ही उसका शरीर छूट गया। इसी कारण से उसे मछिआरे के घर में जन्म मिला था। यह घटना यह सिद्ध करती है कि अन्त समय में जैसा चिन्तन होगा वैसी ही उसकी गति होगी। तुमने जड़ भरत का उपाख्यान पढ़ा होगा। वे भी ध्यानी थे। उन्होंने मृगी के बच्चे को पाला। उसमें मोह हो गया। शरीर छूटते समय उसका ध्यान रहा। परिणाम यह हुआ कि उसे मृगी के पेट में जाना पड़ा, किन्तु योगी ध्यानी था उसे पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई थी। फिर जल्दी मृग योनि से छूट कर मानव शरीर पाया।

मैंने तुम्हें बताया था कि सुखपूर्वक प्राण छोड़ने वाले इने-गिने ही लोग होते हैं। जो पुण्यात्मा होते हैं, योग ध्यान करते हैं, उनका अन्तिम समय अच्छा होता है। शुभ संस्कार सामने आते हैं तथा इनके प्राण चटपट छूट जाते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। हमारे कितने ही योग ध्यानी–संस्कारी बच्चे हैं, जिन्होंने योगियाना ढंग से, कहकर के शरीर छोड़ा है। योगदर्शन में पतञ्जलि जी ने मृत्यु काल को जानने का एक सूत्र बताया है।

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्त ज्ञानं अरिष्टेभ्योवा।

अर्थात् मनुष्य के कर्म दो प्रकार के हैं–**सोपक्रम** और **निरुपक्रम**। सोपक्रम कर्म ऐसे होते हैं जैसे सूखी लकड़ी होती है, वह तुरन्त जल जाया करती है। निरुपक्रम कर्म उस तरह से होते हैं, जैसे गीली लकड़ी हुआ करती है। गीली लकड़ी धीरे–धीरे जला करती है। इन दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से योगी को अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। जो ध्यानाभ्यासी होते हैं, उन्हें गुरुदेव की कृपा से मृत्यु ज्ञान हो जाता है। मैंने तुम्हें कई बार अपने एटा के एक बच्चे डा. फतेह सिंह का उदाहरण दिया है। वह अच्छा ध्यानाभ्यासी था। उसे अपनी मृत्यु का ज्ञान हो गया। सबको बताकर योगियों की तरह ध्यान में बैठकर शरीर छोड़ा। एक और दिल्ली का हमारा बच्चा ओमप्रकाश था, उसे भी अपनी मृत्यु का ज्ञान हो गया था। उसने सारी रात्रि कीर्तन करवाया। सुबह गीता पाठ किया। तत्पश्चात् ५ बजे ध्यान में बैठकर शरीर छोड़ा, परमात्म चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ा। यह शुभ गति देने वाला है। मैंने तुम्हें अपने बच्चे अशोक के बारे में भी कई बार बताया है। उसने भी प्रभुजी को प्रणाम करके चटपट शरीर छोड़ दिया। गाँव अलूपुर में हमारा एक बच्चा खुशीराम था। वह लड़का बड़ा गुरु भक्त था। दो माह पहले ही मृत्यु का ज्ञान हो गया। उसने मेरे पास एक आदमी को भेजा कि गुरुदेव को बुला लायें। वह व्यक्ति मेरे पास आया और कहा–'गुरुजी खुशीराम कुछ अस्वस्थ है आप को बुलवाया है'। मैं उसके बारे में सोचने लगा तब प्रभु जी ने स्पष्ट कहा–इस समय वह बैकुण्ठवासी हो रहा है, मत रोको इसे मैं किसी कारण से उसके पास जा नहीं पाया। जब उसने शरीर छोड़ा उससे पहले एक बार पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया था। शरीर छोड़ने से एक दिन पहले उसने भी सब को बता दिया था। उस दिन प्रातः उठकर नेति आदि क्रियायें कीं। बिल्कुल नये वस्त्र पहन लिये इसके बाद लेट गया। उसे अनुभव हो रहा था। कृष्ण चन्द्र आ रहे हैं स्वर्ग से अप्सरायें आई हैं। घर वालों को कहता था–इन लोगों को तुम लोग दूध पिलाओ। 'श्री कृष्ण जी के विमान को देखकर कह रहा था–देखो माँ श्रीकृष्ण जी के विमान में कितनी रोशनी है, देखा भी नहीं जाता।' अपनी माँ से कहता–माँ तू छत फोड़ दे, मैं छत से जाऊँगा, उसका सूक्ष्म शरीर ऊपर सहस्रार ब्रह्मरन्ध्र से जाना चाहता था। इसलिये छत फोड़कर जाने की बात कह रहा था वह दसवें द्वार से जाना चाहता था। अन्त में कहने लगा–'माँ तूने छत नहीं फोड़ी। मुझे कृष्ण जी अपने रथ में बिठा रहे हैं इनके रथ में ही बैठ जाता हूँ इस प्रकार कहते–कहते उसके प्राण निकल गये। भगवान कहते हैं–

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।'

'ओम्' शब्द का उच्चारण करता हुआ और मेरी याद करता हुआ जो शरीर छोड़ता है वह परम गति को पाता है।

गुरु भक्त ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर जाया करते हैं। गुरु सत्ता काल की हद से परे की सत्ता है। प्रत्यक्–चेतन हैं वे। इस प्रकार के ध्यानी लोग शुभ चिन्तन करते हुये शुभ गति को पाया करते हैं। ध्यानी लोग ब्रह्मलोक के अधिकारी होते हैं और जो निर्बीज समाधि वाले होते हैं, वह तो कैवल्य भागी होते ही हैं। मेरे बच्चे राजनारायण थे। अपने स्वाध्याय व जाप से अपना अन्तिम समय उज्जवल् बना दिया था। दिल्ली में जिस दिन उसका शरीर छूटा, मैं उसको देखने गया था। बराबर श्वास–प्रश्वास से मन्त्र जाप चल रहा था। उसके शुभ व उज्वल संस्कारों का उदय हो गया। मन्त्रजाप करते–करते ही उसका शरीर छूटा। इसलिये शुभ कर्म शुभ चिन्तन मनुष्य शरीर में ही किया जा सकता है। प्रारब्ध तो सभी को भोगना ही होता है। **'प्रारब्ध कर्मणाम भोगादेव क्षयः'** प्रारब्ध कर्म भुगतान से ही नष्ट होते हैं। यह दूसरी बात है कि हम अपने प्रारब्ध को कैसे भोग लेते हैं। स्थूल शरीर में तो भुगतान में लम्बा समय लगेगा। समय अधिक लगेगा तो कष्ट भी अधिक होगा। सामान्य मनुष्य के भोग स्थूल शरीर में ही आते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा है उनका साया है तो सूक्ष्म शरीर में ही बहुत थोड़े में ही कर्म फल का भुगतान हो जाता है। मैंने तुम्हें मंगामल का उदाहरण देते हुये समझाया था कि उसके स्थूल शरीर में आने वाला भोग सूक्ष्म में ही कट गया। क्योंकि उसका ध्यान योग में प्रवेश हो गया था। इसलिये सूक्ष्म में ही भुगतान हो गया। अन्यथा किसी स्त्री के द्वारा छुरे से उसकी हत्या होनी थी। किन्तु सब दृश्य ध्यान में आ गया और भुगतान हो गया। कारण शरीर में (जहाँ जड़ चेतन की गाँठ है) भोग, क्षण भर में निपट जाता है। मैं एक उदाहरण देकर इस बात को समझाता हूँ। नेपाल में हिमालय में श्री प्रभुजी के गुरुदेव श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे हुये थे। प्रभुजी उनके साथ में थे। वहाँ से मनोजविता सिद्धि से आकाशमार्ग से काँगड़े के पहाड़ पर गये। वहाँ ७०० वर्ष के एक ऋषि बैठे थे। महाप्रभु जी ने पूछा–'तुमने हमें क्यों याद किया है' वे कहने लगे–'मेरी चित्त शक्ति आप में लय होना चाहती है।' उन्होंने कहा–'क्या तुम्हारे पिछले सारे जन्मों के संस्कारों का भुगतान हो गया ?' उन्होंने कहा मेरे कार्य समाप्त हो गये हैं। इस पर महाप्रभु जी ने कहा अपना आज से १०७ वाँ जन्म देखो।' उन्होंने समाधि लगाकर देखा उसमें इन्होंने एक बिल्ली मार रखी थी। उसका फल भोगने के लिये उसे एक जन्म बिल्ली का लेना था, बिल्ली के संस्कार बाकी थे। उन्होंने ध्यान में ही कारण शरीर में क्षण में ही वह संस्कार भोग लिया। इसके बाद एक सौ ग्यारहवाँ जन्म के भी संस्कार शेष थे उन्हें भी भोग कर वे निर्मल हो गये। इसके बाद ब्रह्माण्ड विभेदन करके शरीर छोड़ दिया। कहने का अभिप्राय यह कि ध्यानियों को

सूक्ष्म शरीर में प्रारब्ध भोग आ जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। जो लयता की स्थिति को प्राप्त हो चुके होते हैं, उनके ऊपर प्रारब्ध का भुगतान आता ही नहीं। एक लोकोक्ति है हरियाणे की–घड़ी टले, वर्षों से जाये' अर्थात् समय निकल जाये तो बस फिर भोग टल जाता है। मैंने अपने एक एटा के बच्चे का उदाहरण भी दिया था–'सर्प के काटने से उसकी मृत्यु होनी थी' यह उसने ध्यान में देख लिया। उसने ध्यान में ही श्री प्रभु जी से प्रश्न किया। प्रभुजी ! क्या यह संस्कार टाला जा सकता है ? प्रभुजी ने कहा–हाँ यह संस्कार टाला जा सकता है। जिस समय यह संस्कार काल हो, उस समय तुम अपने इष्ट में लय रहना। उसकी लयता की स्थिति बनी हुई थी और अपने इष्टदेव विष्णु में लय रहा करता था। जब निश्चित समय आया उस समय वह ध्यान में बैठ गया और विष्णु में लय हो गया। घर के कक्ष के छोटे से बिल में से ही सर्प निकला और उसके शरीर पर चढ़ गया। बहुत देर तक इधर-उधर घूमता रहा और कुछ देर बाद फिर कहीं दूर चला गया। लड़का ध्यान से उठ गया। उसे पता चला कि सर्प आया था उसके शरीर पर घूमता रहा और बाद में चला गया। उस लड़के ने श्री प्रभु जी से पूछा–प्रभु जी। इस सर्प ने मुझे काटना था किन्तु इसने कुछ नहीं किया। श्री प्रभुजी ने कहा–सर्प ने तुझे काटना था, विष्णु जी को थोड़े ही काटना था। उस समय तू विष्णु में लय था इसलिये साँप ने कुछ नहीं किया और वापिस चला गया। 'प्रारब्ध कर्मणाम–भोगादेव क्षय, यह प्रारब्ध हमारा खत्म हो गया और शरीर छूटने का समय आ गया। अगला प्रारब्ध कैसे बनेगा इसका क्या फैसला। इसका फैसला यह है जो ढेर के ढेर हमारे संचित कर्म पड़े हुये हैं उनमें से हमारा नया प्रारब्ध तैयार होगा। संचित में से ही एक ढेर निकाल लिया उसमें जैसे कर्म हैं, उसके अनुसार अगला जन्म मिलेगा। उन में से एक कर्म मुखिया बन जायेगा और अपने सदृश अन्य कर्मों को इकट्ठा कर लेता है, जिस प्रकार से प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल में अपने अनुरूप सदस्यों को चुन लिया करता है। एक मुखिया कर्म अपने जैसे सहचारी कर्म को साथ लेकर प्रारब्ध बन जाता है। यदि मुखिया कर्म पाप के होंगे, तो जन्म पाप योनियों में हो जायेगा और यदि मुखिया कर्म पुण्य का होगा तो मनुष्य शरीर मिलेगा। इसलिये यह नहीं सोचना चाहिये कि हमारा अगला प्रारब्ध अच्छा ही होगा। प्रारब्ध अच्छा एक स्थिति में हो सकता है। वह मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ। योगदर्शन का सूत्र है **'क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्ट-जन्म वेदनीयः** अर्थात् हमारा कर्माशय क्लेशमूलक होता है। और वह दो प्रकार का होता है। दृष्ट जन्म वेदनीय और अदृष्ट जन्म वेदनीय। दृष्ट जन्म वेदनीय कर्म का मतलब है इसी जन्म में कर्म करें और उसका फल भी इसी जन्म में मिल जाये। अदृष्ट जन्म वेदनीय कर्मों का फल उसी जन्म में नहीं मिलता, जिस जन्म में हम कर्म करते हैं। ये दृष्ट जन्म वेदनीय कर्म और अदृष्ट जन्म वेदनीय कर्म पाप के भी होते हैं और पुण्य के भी होते हैं। तीव्र पुण्य के, कुछ ऐसे कर्म हैं जिनका फल इसी जन्म में मिलता है। **तत्र तीव्र संवेगेन मन्त्र-तप-समाधि-भिर्निवर्तत ईश्वर देवता महर्षि महानुभावानामाराधनादया**

यः परिनिष्पन्नः सः सद्यः परिपच्यते पुण्य कर्माशय इति' अर्थात् तीव्र संवेग–गाढ़ी लगन से किया गया मन्त्र जाप, तप और समाधि का अभ्यास एवं ईश्वर, देवता एवं महर्षि महानुभावों के कृपा का फल, इसी जन्म में मिल जाता है। ध्रुव ने राज्य पाने के लिये भगवान विष्णु की तपस्या की। तपस्या करते–करते समाधि में लीन हो गये, नारायण में लय हो गया। भगवान विष्णु सामने आये किन्तु उसकी समाधि भंग नहीं हुई। भगवान ने अपने शंख का स्पर्श कराया इससे उनकी समाधि टूटी। भगवान ने उससे कहा–वर माँगों। इस पर ध्रुव ने उत्तर दिया–

'स्थानाभिलाषी तपसी स्थितोऽहम्
त्वाम् प्राप्तवान् देव मुनीन्द्र गुह्यम्।
काचन विचन्वन आप्त दिव्य रत्नम्
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे।।'

अर्थात मैं तो राज्य पाने की इच्छा से तपस्या कर रहा था। काँच ढूँढते हुये देवता और मुनियों को भी दुर्लभ आप दिव्य रत्न मुझे मिल गये। स्वामिन् मैं कृतार्थ हूँ। मुझे कुछ वर नहीं चाहिये।' कुछ न माँगने पर भी उसे अटल पद मिल गया। मैं तुम्हें मार्कण्डेय का उपाख्यान सुनाया करता हूँ। मृकण्ड ऋषि का पुत्र था उसे सोलह वर्ष की आयु ही प्राप्त थी। मृकण्ड ऋषि ने अपने पुत्र को ऋषियों को प्रणाम करना सिखाया। ऋषि उन्हें आशीर्वाद देते–चिरंजीवी भव! साथ ही वह मृत्युञ्जय का जाप करता था, भगवान शिव की आराधना किया करता था। जिस दिन मृत्यु होनी थी, उस दिन आराधना से प्रसन्न होकर भगवान शिव प्रकट हो गये और उन्हें अमर बना दिया। यह है दृष्ट जन्म वेदनीय पुण्य कर्म का फल। मेरे कहने का अभिप्राय है तुम भी दृष्ट जन्मवेदनीय पुण्य कर्म तैयार करो। इसके लिये तुम्हें ध्यान योग का अभ्यास करना चाहिये। गुरु मन्त्र का खूब जाप करो। इससे दृष्टजन्म वेदनीय पुण्य कर्म तैयार हो जाता है। गुरुमन्त्र का जाप करते हुये तुम्हारा मनुष्य जन्म कहीं नहीं जायेगा। ध्यानाभ्यास करने से मनुष्य शरीर मिलता रहेगा जब तक कैवल्य प्राप्ति न हो जाये। इसलिये ध्यानाभ्यास की आदत डालो। सूक्ष्म शरीर में वृत्ति रहने पर कर्मों का भुगतान जल्दी–जल्दी होने लगेगा। इसलिये अपने ध्यानाभ्यास को बढ़ाते चले जाओ। ध्यानाभ्यास में भगवान शिव, भगवान कृष्ण, भगवान राम आदि का ध्यान किया जाता है। यह सगुणोपासना है। इससे–इनकी आकृतियों को ध्यान का अवलम्ब बनाना होता है। मानो गुरूदेव उपदेश देते हैं। मूलाधार कमल पर गणेश जी विराजमान हैं, उनका ध्यान करो। सर्वप्रथम साधक कल्पना करेगा। मूलाधार में चार कमल दल है। श्री गणपति जी बीच में विराजमान हैं। पीले रंग की धोती पहने हुये हैं। उनकी लम्बी सूँड है। पेट बड़ा है। जिस पर मुकुट विराजमान है। बायें–दायें ऋद्धि-सिद्धियाँ हैं।

इस प्रकार से कल्पना करते रहने को 'धारणा' कहते हैं–**'देश बन्ध चित्तस्य धारणा'**। इस प्रकार से एक स्थान पर बराबर कल्पना करना चित्त का देशबन्ध है।

'तत्राऽपि तावत् वृत्तिमात्रेण बन्धो धारणा' वृत्ति मात्र से मन को एक जगह लगाना धारणा है। मैं तुम्हें इस बात को बार–बार समझाता रहता हूँ कि जो साधक छः महीने तक इसी प्रकार से गुरूदेव की आज्ञानुसार संयमपूर्वक–जितेन्द्रिय होकर धारणा करता है, वही ध्यान में बदल जायेगा। **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'**। तेलधारा वत् जब वृत्ति स्थिर होने लगे, बराबर इष्ट देव दीखने लगें बाहर की इन्द्रियों के व्यापार बन्द होने लगें, तभी अन्दर इष्ट के दर्शन बराबर होने लगते हैं।

प्रारम्भ में साधक को गुरूदेव के वचनों पर विश्वास करके अभ्यास में लगना पड़ता है। जिस प्रकार से वर्णाक्षरों का बोध कराते हुये, अध्यापक द्वारा बताये गए कि यह अक्षर 'अ' है, बच्चे को उसे 'अ' ही मानना पड़ता है। उसी प्रकार से आरम्भ में श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के वचनों पर विश्वास करके साधना करनी होती है।

कम से कम छः माह तक इसी प्रकार से दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवित के नियम से अपने चित्त को इष्ट में एकाग्र करे। यही धारणा कहलाती है।

साधना में प्रारम्भ में सगुण उपासना का ही आश्रय लिया जाता है। भगवान राम, श्री कृष्ण तथा अन्यान्य वीतरागी महापुरुषों का ध्यान करवाया जाता है इनकी आकृतियों में हमारी श्रद्धा होती है। अतः मन जल्दी एकाग्र हो जाता है। उनकी आकृतियाँ हमें अच्छी लगती हैं।

अर्जुन ने भी भगवान कृष्ण से सगुण उपासना और निर्गुण उपासना के भेद के विषय में पूछा था। भगवान ने बताया कि 'यद्यपि अव्यक्त की उपासना करने वाले भी मुझे ही प्राप्त होते हैं, लेकिन उनकी साधना में कठिनता अधिक है। अव्यक्त में मन–बुद्धि जल्दी से एकाग्र नहीं हो पाते। अव्यक्त उनकी पहुँच से आगे है। इसलिये भगवान ने **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय'** अर्थात् हे अर्जुन। तू अपने मन और बुद्धि को मुझ में लगा दे इससे तू मेरे में लय हो जायेगा, एक रूपता हो जायेगी। यह तद्रूपता का होना सम्प्रज्ञात समाधि है। निर्जीब समाधि इस से आगे है।

वीतरागी महापुरुषों से अथवा भगवान् कृष्णादि इष्टों में, मन–बुद्धि लय हो जाने पर वे लोग जिस स्थिति में रहा करते हैं, उसी स्थिति में साधक रहने लगता है। क्योंकि उनका प्रकृति एवं अविद्यादि क्लेशों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः साधक के भी अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं। इसलिये अन्तर्जगत् में प्रवेश करने का प्रयत्न करो। जो पवित्र योग मार्ग में चलने लगेगा, सर्वशक्तिमान श्री प्रभु जी उनकी सब प्रकार से सहायता करेंगे। जो थोड़ा भी अन्तर्जगत में प्रवेश पा जाता है उसको अगला मनुष्य जीवन मिलने में कोई कठिनाई नहीं। अवश्य मनुष्य जीवन मिलेगा ही मिलेगा।

इसलिये तत्परता से तीव्र संवेग अर्थात् गाढ़ी लगन से साधना में लग जाओ, यही कल्याण का मूल साधन है।

***

● सम्पादकीय

नव वर्ष मंगलमय हो !

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

सिद्धयोग के पाठ वृन्द ! नया वर्ष आया सबके लिये मंगलमय हो। नया वर्ष जब आता है तो हमें प्रसन्नता होती है कि हम एक वर्ष बड़े हो गये, किन्तु यथार्थ में हम एक वर्ष छोटे हो जाते हैं। इस प्रकार से धीरे–धीरे हमारी आयु समाप्त हो जाती है। इसलिये मनुष्य के लिये सौभाग्य की बात यह है कि उसके जीवन के प्रत्येक सांस का सदुपयोग हो और हम धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय का अवलम्ब लेकर परम कल्याण की ओर बढ़ें। शास्त्र एवं महापुरुष बतलाते हैं कि जिस जीव पर ईश्वर की कृपा होती है उसे जीवन में तीन वस्तुयें उपलब्ध हो जाती हैं। वे तीन वस्तुएँ हैं–(१) मनुष्यत्व (२) मुमुक्षत्व एवं (३) महापुरुष का आश्रय। गुरुदेव की कृपा से हम लोगों को मनुष्य का जीवन मिल गया है। 'दुर्लभो मानुषो जन्म' मनुष्य का जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य देह में ही ईश्वर ने चेतना के विकास की पराकाष्ठा का द्वार खोल दिया है। उसमें भी सतोगुणी परिवार में जन्म हो तभी सौभाग्य है। जीवन में दूसरी कृपा है–मुमुक्षत्व की। मनुष्य जीवन तो मानों प्राप्त हो गया किन्तु 'सर्वमेव दुखम् विवेकिनः' विवेकी–योगी के लिये संसार में सुख जैसी कोई बात नहीं है। मनुष्य पग–पग पर क्लेशों एव परेशानियों से घिरा रहता है। उसे शाश्वत् सुख कहीं मिल नहीं पाता। इसलिये विवेकवान व्यक्ति दुःखों से छूटने का उपाय ढूंढता है। बन्धनों से मुक्त होना चाहता है। इसे ही मुमुक्षत्व कहते हैं। यदि मनुष्य के मन में दुःखों से मुक्त होने की तीव्र इच्छा जागृत हो जाये तो वह अवश्य ही इस ओर चल पड़ता है। मुमुक्षु 'अथातोब्रह्मजिज्ञासा' के सूत्रानुसार ब्रह्म जिज्ञासा अर्थात् ब्रह्म को जानने की इच्छा वह करता है तभी तो गुरुदेव उसे ब्रह्मयोग का उपदेश करते हैं। जीवन में तीसरी दुर्लभ बात महापुरुष संश्रय है। जब तक मनुष्य को ब्रह्मनिष्ठ सिद्धयोगी गुरुदेव की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक मुक्ति की कल्पना भी हास्यास्पद ही है। यदि कोई कहे कि बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जिससे इस बात का संकेतमिलता है कि बिना गुरु के भी शक्ति सम्पन्न योगी हुये हैं तो इसमें यह कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति पूर्वजन्म में ही गुरुकृपा को प्राप्त कर चुका था और उसकी साधना उत्कृष्ट स्तर की हो चुकी थी। ऐसे योगी योग दर्शन की भाषा में 'भवप्रत्यय' वाले योगी कहलाते हैं। कभी–कभी भगवान शिव आदि के भी अंशावतार होते हैं जिनमें सिद्धियाँ–शक्तियाँ जन्मजात होती हैं। आदि गुरु

शंकराचार्य को लोग शिवावतार मानते हैं। उनमें भी जन्मजा विशिष्ट शक्तियाँ थीं। योगी सत्य का उपासक होता है। समाधि का अभ्यास करते-करते वह ऋतम्भरा बुद्धि से युक्त हो जाता है। बिना ऋतम्भरा बुद्धि अथवा विवेकख्याति के कोई भी सत्य का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। योगी समाधि के द्वारा सत्यासत्य को अलग-अलग करके देखता है। गुरुदेव अपने शिष्य को हंस बनाते हैं। हंस में यह गुण होता है कि वह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। इसे दर्शन की भाषा में 'नीरक्षीर विवेक' कहते हैं। हंस आत्मा का भी नाम है जो हंस विद्या का स्वामी होता है, उसे ही परमहंस कहा जाता है।

योग का लक्ष्य असत्य को सत्य से अलग करना है। साधक को सत्याचरण पर आरूढ़ होना चाहिये। सत्य एक ऐसा परम तत्व है जो देवतावाद, सम्प्रदायवाद तथा भक्तों के विभिन्न मान्यताओं को अपने में समेटे हुये भी इनसे दूर होता है। योग के प्रथम सीढ़ी के रूप में उपदिष्ट यम और नियम का पालन शनैः-शनैः सत्य की ओर ले जाता है। साधक को निरन्तर 'ऋत् बुद्धि' के लिये यत्नशील रहना चाहिये। हम लोगों का जीवन-चक्र क्षण-क्षण के परिणाम से प्रतिक्षण ह्रास की ओर जा रहा है। अतः मनुष्य को समय रहते सावधान हो जाना चाहिये। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् अपने व्याख्यानों में अपने मुखारविन्द से भर्तृहरि जी का एक श्लोक प्रायः कहा करते थे। उसका भावार्थ है कि प्रतिदिन सूर्य उदय होता है और अस्त हो जाता है। हमारी आयु का एक दिन समाप्त हो जाता है लौकिक धन्धे, व्यापार में व्यस्त रहने के कारण हमें समय का पता ही नहीं चलता है। जन्म, जरा एवं मृत्यु को जानकर भी भय नहीं होता है। सारा संसार मोह और प्रमाद रूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त व पागल हो रहा है। उसे अपने विषय में सोचने का समय ही नहीं है। इसलिये मनुष्य को ईश्वर की कृपा से स्वस्थ मानव शरीर मिल जाये, मुमुक्षु बनकर योग मार्ग का अवलम्ब मिल जाये और पूर्ण सद्गुरु का आश्रय और कृपा मिल जाये तो अपने परम कल्याण के लिए दृढ़ता से लग जाना चाहिये।

आइये, नव वर्षागमन के इस मंगलमय पावन वेला पर हम संकल्प करें कि गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करते हुये उनके संकल्पों को पूरा करें। हम स्वयं जीवन में योग को अपनाकर चतुर्मुखी उन्नति करते हुये योग के अमर सन्देश को जन-जन तक पहुँचायेंगे। गुरुदेव ने अधिकारी शिष्यों को जो अध्यात्म प्रसाद दिया है उससे समाज का जिज्ञासु अधिकारी वर्ग लाभान्वित हो। योग सार्वभौम विद्या है। कोई भी इसका अधिकारी बनकर इस पर आरूढ़ होकर अपना व दूसरे का कल्याण कर सकता है। 'योगात् सञ्जायते ज्ञानम्' योग से ही आत्म ज्ञान होता है। इसलिये हम सब अनन्य चित्त हो गुरुदेव का स्मरण कर योग युक्त हो जायें।

***

रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

कुण्डलिनी तथा आध्यात्मिक जागृति

बिना कुण्डलिनी के जागे चैतन्य प्राप्त नहीं होता। मूलाधार में कुण्डलिनी सुप्त रहती है। जाग जाने पर वह स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि चक्रों को भेदती हुई अन्त में मस्तक में जा पहुँचती है, तभी समाधि होती है। यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

ईश्वरदर्शन का एक लक्षण यह है—भीतर से महावायु घरघराकर उठती हुई मस्तक पर जा पहुँचती है। तब समाधि होकर भगवान् के दर्शन प्राप्त होते हैं।

कुण्डलिनी–जागरण के समय होने वाली अनुभूति का वर्णन करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा था "वह सर सर करती हुई पैर से सिर की ओर उठती है। जब तक वह सिर तक नहीं पहुँचती तब तक मेरे होश रहते हैं; पर ज्योंही वह सिर पर चढ़ जाती है त्योंही मैं बिलकुल बेसुध हो जाता हूँ। तब देखना–सुनना तक बन्द हो जाता है, फिर बातचीत करने का सवाल कहाँ ! बातचीत करे कौन ? —'मैं' 'तुम' यह बुद्धि ही चली जाती है। मैं सोचा करता हूँ कि तुम लोगों को सब बताऊँ—उसके ऊपर उठते समय क्या–क्या दर्शन–वर्शन होते हैं सब बताऊँ। जब तक वह (क्रमशः हृदय और कण्ठ को दिखाते हुए) यहाँ तक या ज्यादा से ज्यादा यहाँ तक उठ आती है, तब तक बताया जा सकता है और मैं बताता भी हूँ, पर जैसे ही वह (कण्ठ को दिखाते हुए) इस जगह को पार कर ऊपर उठती है, वैसे ही मानो कोई मेरा मुँह पकड़ दबाता है—तब सब गड़बड़ा जाता है, मैं कुछ सम्हाल नहीं पाता। (कण्ठ दिखाकर) इसके ऊपर चढ़ने से जो दर्शन होते हैं उन्हें बताने के लिए जैसे ही मैं उनका विचार करता हूँ, वैसे ही मेरा मन झट से ऊपर चला जाता है—फिर मैं कुछ बता नहीं पाता।"

कण्ठ से ऊपरवाले चक्रों में मन के पहुँचने पर जो दर्शन होते हैं, उन्हें बतलाने के लिए श्रीरामकृष्ण ने कितनी बार प्रयत्न किया, पर उन्हें हर बार असफल होना पड़ा। एक दिन उन्होंने बड़े निश्चय के साथ उन बातों को बतलाना आरम्भ किया। मन के कण्ठ तक के चक्रों तक पहुँचने पर जो दर्शनादि होते हैं उनका उन्होंने भलीभाँति वर्णन किया। फिर भौंहों के मध्यस्थल का निर्देश करते हुए वे बोले, "मन के इस स्थान पर पहुँचते ही जीव को परमात्मा के दर्शन होते हैं और वह समाधिमग्न हो जाता है। तब परमात्मा और जीवात्मा के बीच केवल एक स्वच्छ, पतला–सा परदा ही आड़ रह जाता है। उस समय वह ऐसा देखता है कि—" इस प्रकार ज्योंही वे परमात्मा के दर्शन का विशेष रूप से वर्णन करने गए त्योंही वे समाधिस्थ हो गए ! समाधि टूटने के बाद उन्होंने फिर बतलाने की कोशिश की, पर फिर वे समाधिस्थ हो गए ! इस तरह बार–बार प्रयत्न करने के बावजूद असफल होकर उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा, "अरे, मैं तो सचमुच चाहता हूँ कि तुम लोगों को सब बातें बताऊँ, थोड़ा भी न छिपाऊँ, पर माँ किसी हालत में बताने नहीं देती—मुँह पकड़ लेती है।"

कुण्डलिनीशक्ति के सुषुम्नामार्ग से ऊपर उठते समय जो विभिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं, उनके बारे में श्रीरामकृष्ण कहा करते–"वह जो सर सर करती हुई मस्तक पर चढ़ती है, वह हमेशा एक ही प्रकार से नहीं चढ़ती। शास्त्रों में उसकी पाँच प्रकार की गति का उल्लेख किया गया है। (१) **पिपीलिकागति**–जैसे चींटियाँ मुँह में खाने की चीज लेकर एक कतार में सुरसुराती हुई चली जाती हैं, वैसे ही पैरों में एक किस्म की सुरसुराहट सी शुरू होकर वह क्रमशः धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठने लगती है; जब वह सिर तक जा पहुँचती है तब समाधि लग जाती है। (२) **भेक गति**–जिस प्रकार मेढक दो–तीन बार उछलकर थोड़ा रुक जाता है, फिर दो–तीन बार उछलकर थोड़ी देर रुक जाता है, ठीक उसी प्रकार कोई वस्तु पैरों की ओर से चलकर मस्तक पर चढ़ती हुई सी प्रतीत होती है; उसके मस्तक पर चढ़ते ही समाधि लग जाती है। (३) **सर्पगति**–जिस प्रकार साँप लम्बे होकर या कुण्डली के आकार में चुपचाप पड़े रहते हैं, परन्तु जैसे ही सामने कोई शिकार देख लेते हैं या भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही सरसराकर टेढ़ी–मेढ़ी गति से भागने लगते हैं, उसी प्रकार वह भी सरसराती हुई एकदम मस्तक पर जा पहुँचती है और तत्काल समाधि लग जाती है। (४) **पक्षी गति**–पक्षी जिस प्रकार एक जगह से दूसरी जगह जाकर बैठते समय भुं से उड़कर कभी कुछ ऊँचे चढ़ते जो कभी कुछ नीचे उतर आते हैं, किन्तु कहीं विश्राम नहीं लेते, जहाँ बैठने की ठानी है एक दम वहीं जाकर बैठते हैं, उसी प्रकार वह सीधे मस्तक पर चढ़ जाती है; और साधक को समाधि लग जाती है। (५) **वानरगति**–लंगूर जैसे एक पेड़ से दूसरे पर जाते समय 'हूप' करते हुए एक डाली से दूसरी डाली पर जा पहुँचते हैं, वहाँ से फिर 'हूप' करके और एक डाली पर कूद जाते हैं, इस तरह दो–तीन छलाँगों में जहाँ जाने का विचार है वहाँ पहुँच जाते हैं, वैसे ही वह भी दो–तीन छलांगों में मस्तक पर जा पहुँचती है और तत्काल समाधि लग जाती है।"

इन दर्शनों की वेदान्त के दृष्टिकोण से व्याख्या करते हुए वे कहते–"वेदान्त में सप्तभूमिकाओं का उल्लेख है। प्रत्येक भूमि में भिन्न–भिन्न प्रकार के दर्शन होते हैं। मन स्वभावतः गुदा, लिंग और नाभि, इन तीन निम्न स्तर की भूमियों में ही चढ़ता–उतरता रहता है, उसकी दृष्टि इन्हीं में–खाना, पीना, मैथुन आदि में ही–निबद्ध रहती है। इन तीन भूमियों को पार कर यदि मन चौथी भूमि हृदय तक जा पहुँचे तो साधक को ज्योति के दर्शन होते हैं। किन्तु हृदय तक उठने के बाद भी कभी–कभी मन पुनः नीचे की तीन भूमियों में–गुदा, लिंग, नाभि में उतर आता है। हृदय का अतिक्रमण कर यदि किसी का मन पाँचवी भूमि कण्ठ तक जा पहुँचे तो फिर वह ईश्वरीय चर्चा छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार की बातें–विषयसम्बन्धी बातें इत्यादि–नहीं कर सकता। उस अवस्था में मुझे ऐसा ही हुआ करता–यदि कोई विषयसम्बन्धी चर्चा करने लगता तो मुझे ऐसा लगता कि मानों मेरे सर पर कोई लाठी मार रहा हो; मैं दूर पंचवटी की ओर भाग जाता ताकि वह सब सुनना न पड़े। विषयासक्त लोगों को देखते ही मारे डर के छिप जाता। आत्मीय स्वजन मानो कुएँ जैसे प्रतीत होते, ऐसा लगता, मानो वे मुझे घसीट कर कुएँ

में गिराने का प्रयत्न कर रहे हैं; एक बार गिर पड़ने से फिर उठ न सकूँगा। दम घुटने लगता, ऐसा लगता कि प्राण अब गए, तब गए, वहाँ से भाग आने पर तब कहीं शान्ति मिलती। कण्ठ में पहुँचने के बाद भी मन पुनः गुदा, लिंग, नाभि में उतर सकता है, इसलिए तब भी सावधान रहना चाहिए। फिर कण्ठ का अतिक्रमण कर यदि किसी का मन भौंहों के मध्यस्थल तक जा पहुँचे तो फिर उसके पतन की आशंका नहीं रहती। उस समय वह परमात्मा के दर्शन प्राप्त कर निरन्तर समाधिमग्न रहता है। इसके तथा सहस्रार के बीच केवल एक काँच की तरह स्वच्छ परदे भर की आड़ है। इस समय परमात्मा इतने निकट होते हैं कि साधक को ऐसा प्रतीत होता है, मानो मैं उनमें मिल गया हूँ, उनके साथ एक हो गया हूँ; परन्तु तब भी वह एक नहीं हुआ है। यहाँ से मन यदि कभी नीचे उतरे तो अधिक से अधिक कण्ठ या हृदय तक ही उतरता है–उसके नीचे नहीं उतर सकता। जीवकोटि के साधक वहाँ से फिर नहीं उतरते–उनके इक्कीस दिन तक निरन्तर समाधि में लीन रहने के बाद वह व्यवधान या परदा छिन्न हो जाता है तथा वे परमात्मा के साथ पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं। सहस्रार में परमात्मा के साथ सम्पूर्ण एक हो जाना ही सप्तम भूमि में चढ़ना है।"

नकली भावावस्था

किसी व्यक्ति को संकीर्तन आदि में अत्यधिक भावोच्छ्वास के कारण एक प्रकार का आवेश होता था जो बाहर से भावसमाधि की तरह दिखाई देता था। श्रीरामकृष्ण ने उसे देख कर कहा था–"ठीक–ठीक भावावस्था होने पर क्या कभी ऐसा होता है ? उसमें तो मनुष्य डूब जाता है, स्थिर हो जाता है। यह क्या ? स्थिर हो, शान्त हो ? (दूसरे श्रोताओं से) ये सब किस प्रकार के भाव हैं जानते हो ? जैसे, कड़ाही में छटाँक भर दूध डालकर उसे चूल्हे पर औटाया जा रहा हो। उफान उठकर ऐसा दिखाई देता है मानो कितना दूध है, कड़ाही भरी हुई है। फिर उतारकर देखो तो दूध बिलकुल ही नहीं है; जो थोड़ासा था वह भी सूखकर कड़ाही से ही लिपट गया है।"

ईश्वरीय रूपदर्शन तथा ध्वनिश्रवण

ईश्वर का साक्षात्कार दो प्रकार का होता है–एक में जीवात्मा तथा परमात्मा का योग होता है, दूसरे में ईश्वरीय रूपों के दर्शन होते हैं। पहला ज्ञान है और दूसरी भक्ति।

सचमुच ही ईश्वर को देखा जा सकता है, जैसे इस समय हम–तुम बैठकर बातचीत कर रहे हैं, इसी तरह उनके दर्शन तथा उनसे सम्भाषण हो सकते हैं। मैं सच कहता हूँ, शपथपूर्वक कहता हूँ।

ईश्वर विभिन्न रूपों में प्रकाशित होते हैं। शुद्धहृदय भक्त इन ईश्वरीय रूपों को देख सकते हैं। ईश्वर की कृपा से भीतर दिव्य भागवती तनु निर्मित होता है, उसमें दिव्य इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हीं के द्वारा इन रूपों के दर्शन होते हैं। केवल सिद्ध पुरुष ही इन्हें देख सकते हैं।

'क्या ईश्वर के दर्शन इन चर्मचक्षुओं से ही होते हैं ?' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण

ने कहा, "नहीं, उन्हें इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। साधना करते-करते साधक के भीतर एक प्रेम की देह उत्पन्न होती है, उसमें प्रेम के नेत्र प्रेम के कर्ण होते हैं। उन्हीं प्रेमनेत्रों से उनके दर्शन होते हैं, उन्हीं प्रेम कर्णों से उनकी वाणी सुनाई देती है।"

अनाहत ध्वनि सदा अपने आप उठ रही है। यह प्रणव ध्वनि है। यह परब्रह्म से आ रही है। योगी इसे सुन पाते हैं। विषयासक्त जीव इसे नहीं सुन पाते। योगी समझ सकते हैं कि यह ध्वनि एक ओर नाभि में से उठती है तथा दूसरी ओर उस क्षीरोदशायी परब्रह्म से।

समाधि तथा ब्रह्मज्ञान

समाधि-अवस्था में मन में किस प्रकार का अनुभव होता है ? मछली को कुछ देर तक पानी के बाहर निकाल रखने के बाद फिर पानी में छोड़ देने पर उसे जिस प्रकार का आनन्द होता है, समाधि में मन में उसी प्रकार का अनुभव होता है।

'यह अत्यन्त दुर्गम स्थान है, वहाँ गुरु और शिष्य की भेंट नहीं होती।' ब्रह्मज्ञान की अवस्था ऐसी गूढ़ है। कि उसके होने पर गुरु-शिष्य-भेदबुद्धि नहीं रह जाती।

जिस प्रकार दीपक के जलाते ही हजार वर्षों की अंधेरी कोठरी भी तुरन्त आलोकित हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश जीव के हृदय से जन्मजन्मान्तर के अज्ञानान्धकार को दूर कर उसे प्रकाशित कर देता है।

'क्या समाधि-अवस्था में आपको बाह्य जगत् का बोध रहता है ?' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा था-"समुद्र में जल के नीचे पहाड़-पर्वत, घाटियाँ और दर्रे होते हैं, पर वे ऊपर से नहीं दिखाई देते। समाधि में भी अखण्ड सच्चिदानन्द समुद्र के ही दर्शन होते हैं, अहं-बोध जाने कहाँ छिप जाता है !"

यथार्थ ज्ञान होने पर अहंकार नहीं रहता। समाधि हुए बिना ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। भरे दोपहर के समय सूरज ठीक माथे के ऊपर रहता है। उस समय मनुष्य चारों ओर देखता है, पर उसे अपनी छाया नहीं दिखाई देती वैसे ही, यथार्थ ज्ञान होने पर, समाधि होने पर अहंकाररूपी छाया नहीं रहती। यदि ठीक-ठीक ज्ञान होने के पश्चात् भी किसी में 'अहं' दिखाई पड़े तो ऐसा जानना कि वह 'विद्या का अहं' है, 'अविद्या का अहं' नहीं।

बुद्धदेव नास्तिक थे या नहीं इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा था-"वे नास्तिक नहीं थे; वे अपनी उपलब्धियों के विषय में मुँह से कुछ कह नहीं सके। 'बुद्ध' माने क्या है जानते हो ?- 'बोध' स्वरूप का चिन्तन करते हुए वही बन जाना-बोध-स्वरूप बन जाना। जिस अवस्था में स्वरूप का ज्ञान होता है वह 'अस्ति' तथा 'नास्ति' के बीच की अवस्था है। 'अस्ति' तथा 'नास्ति' प्रकृति के गुणधर्म हैं। यथार्थ सत्य 'अस्ति' नास्ति' के परे है।"

"ज्ञान अज्ञान दोनों के पार हो जाओ, तभी उन्हें जान पाओगे। नानात्व का ज्ञान ही अज्ञान है। पाण्डित्य का अहंकार भी अज्ञानजन्य ही है। एक ईश्वर सर्वभूतों में विराजमान हैं-इस निश्चयात्मक बुद्धि का नाम ज्ञान है उन्हें विशेष रूप से जानना ही विज्ञान है।

"मान लो कि पैर में काँटा चुभा है। उस काँटे को निकालने के लिए और एक काँटे की

जरूरती पड़ती है। फिर उस काँटे के निकल जाने पर दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है। इसी प्रकार अज्ञानरूपी काँटे को निकालने के लिए पहले ज्ञानरूपी काँटे को लाना पड़ता है। फिर उन्हें पाने के लिए ज्ञान-अज्ञान दोनों को फेंक देना पड़ता है, वे ज्ञान अज्ञान के परे जो है।

"लक्ष्मण ने कहा था, 'राम ! कितना आश्चर्य है ! इतने बड़े ज्ञानी वसिष्ठदेव भी पुत्रशोक से अधीर होकर रो पड़े !' राम ने कहा, 'भाई ! जिसमें ज्ञान है, उसमें अज्ञान भी है; जिसे एक का ज्ञान है, उसे अनेक का भी ज्ञान है। जिसे प्रकाश का अनुभव है, उसे अन्धकार का भी अनुभव है। ब्रह्म ज्ञान-अज्ञान के पार है, पाप-पुण्य के पार है, धर्म-अधर्म के पार है, शुचि-अशुचि के पार है।'

एक व्यक्ति-"दोनों काँटों को फेंक देने के बाद क्या रह जाता है ?"

श्रीरामकृष्ण-"नित्य शुद्ध बोधरूपम्। वह तुम्हें कैसे समझाऊँ ? अगर तुमसे कोई पूछे, 'कहो घी कैसा लगा ?' तो तुम उसे घी का स्वाद कैसे समझाओगे ? ज्यादा से ज्यादा तुम उससे इतना ही कह सकते हो कि 'घी घी के ही जैसा लगा'। एक नववधू से उसकी सखी ने पूछा था, 'तेरे पति आए हुए हैं। अच्छा बहन, पति के आने पर किस तरह का आनन्द होता है ?' वह नववधू बोली, 'बहन, तेरा विवाह होने के बाद जब तेरे पति आएँगे, तब तू यह समझ पाएगी; अभी तुझे मैं कैसे समझाऊँ ?"

समाधि-अवस्था का मनोभाव

चिड़िया के घोंसले को यदि नष्ट कर दिया जाए तो वह उड़ती हुई आकाश का आश्रय लेती है। इसी प्रकार, यदि देह और जगत् का बोध चला जाए तो जीवात्मा मानो परमात्मा-रूपी आकाश में उड़ जाता है-समाधिमग्न हो जाता है।

जीव के मरे बिना शिव नहीं आता (अर्थात् जीवत्व के नष्ट हुए बिना शिवत्व प्राप्त नहीं होता)। फिर, शिव के शव बने सिवा माँ आनन्दमयी उसके वक्षः स्थल पर नृत्य नहीं करती (अर्थात्) इस शिवत्व अभिमान का भी अतिक्रमण करने के बाद ही सर्वोच्च आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है।

कपूर को जलाने पर कुछ भी नहीं बचता। विचार का अन्त हो जाने पर समाधि होती है; उस समय 'मैं' 'तुम' 'जगत्' इन सब का चिह्नमात्र नहीं रहता, मन 'परब्रह्म' में लीन हो जाता है।

अहंकार के दूर हो जाने पर जीवत्व का नाश हो जाता है। इस अवस्था में समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जीव नहीं, ब्रह्म ही ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

किसी भक्त के यह कहने पर कि 'ईश्वर अवाङ्मनस गोचर हैं-मन, बुद्धि तथा वाणी के अगोचर हैं', श्रीरामकृष्ण ने कहा, "नहीं; यद्यपि वे इस मन के गोचर नहीं हैं, तथापि वे शुद्ध मन के गोचर हैं; इस बुद्धि के गोचर नहीं हैं, परन्तु शुद्धि बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी-कांचन की

आसक्ति के दूर होते ही शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि का उदय होता है। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा एक ही हैं। वे इस शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। क्या ऋषि–मुनियों ने उनके दर्शन नहीं किए ? उन्होंने शुद्ध बुद्धि के द्वारा शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार किया था।"

ईश्वर विषयासक्त मन और बुद्धि के अगोचर हैं, परन्तु शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी–कांचन के ही कारण मन अशुद्ध होता है। जब तक भीतर अविद्या है तब तक मन और बुद्धि कभी शुद्ध नहीं हो सकते। वैसे तो मन और बुद्धि अलग माने जाते हैं, परन्तु शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक हैं–दोनों चैतन्य स्वरूप शुद्ध आत्मा हैं। इसी चैतन्य–स्वरूप (शुद्ध आत्मा) में चैतन्य स्वरूप (परमात्मा) का साक्षात्कार होता है।

समाधि के पश्चात् होने वाला विज्ञान

'नेति नेति' करते हुए आत्मा की उपलब्धि करने का नाम ज्ञान है। 'नेति नेति' विचार करते हुए समाधि–अवस्था प्राप्त होने पर आत्मा की उपलब्धि होती है।

विज्ञान यानी विशेष से जानना। किसी ने दूध के बारे में सुना भर है, किसी ने दूध देखा हैं और किसी ने दूध पीया है। जिसने केवल सुना ही है वह अज्ञानी है; जिसने देखा है वह ज्ञानी है, जिसने पीया है उसे विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से ज्ञान हुआ है। ईश्वर के दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् उनके साथ परम आत्मीय की तरह वार्तालाप आदि होना–इसी का नाम विज्ञान है।

पहले 'नेति नेति' विचार करना पड़ता है। ईश्वर पंचभूत नहीं हैं; इन्द्रियाँ नहीं हैं; मन, बुद्धि, अहंकार नहीं हैं, वे सभी तत्वों के अतीत हैं। छत पर चढ़ने के लिए एक–एक कर सब सीढ़ियों को तंग करते हुए जाना होता है। सीढ़ियाँ छत नहीं हैं। किन्तु छत पर जा पहुँचने के बाद दिखाई देता है। कि जिन ईंट, चूना, सुर्खी आदि वस्तुओं से छत बनी है, उन्हीं से सीढ़ियाँ भी बनी हैं। जो परब्रह्म है, वही यह जीव–जगत् बना है, चौबीस तत्व बना है। जो आत्मा है, वही पंचभूत बना है। तुम कहोगे, मिट्टी अगर आत्मा से ही बनी है तो वह इतनी कड़ी कैसे है ? उनकी इच्छा से सब कुछ सम्भव हो सकता है। क्या रज–वीर्य से हड्डी और माँस का निर्माण नहीं होता है ? समुद्र के झाग से बना पत्थर कितना कड़ा होता है।

विज्ञान लाभ होने के बाद संसार में भी रहा जा सकता है। उस समय स्पष्ट अनुभव होता है कि ईश्वर ही जीव–जगत् बने हैं, वे संसार से अलग नहीं हैं। ज्ञानलाभ करने के पश्चात् जब रामचन्द्र ने कहा कि वे संसार में नहीं रहेंगे, तब दशरथ ने उन्हें समझाने के लिए वशिष्ठ को उनके पास भेज दिया। वशिष्ठ ने कहा, 'राम ! यदि संसार ईश्वर से रहित हो, तो तुम उसका त्याग कर सकते हो !' रामचन्द्र चुप्पी साधे रहे, क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि ईश्वर को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

***

सबसे न्यारा प्यारा तुम्हारा !

रचयिता–प्रो० भवदेव झा

सबसे ऊँचा, सबसे सच्चा, सबसे न्यारा प्यार तुम्हारा !
भला–बुरा हम जो कह देते,
तुम चुपचाप उसे सह लेते;
फूल तुम्हें दें या दें काँटे, तुमको सब स्वीकार हमारा !
बात तुम्हारी कभी न मानी;
चलते रहे राह मनमानी;
फिर भी कभी शिकायत क्या की ? कितना हृदय उदार तुम्हारा !
जब–जब प्रिय, अस्वस्थ हुए हम,
तुमने हमें सिखाया संयम;
कटु–मधु ओषधि से तुम करते नित समुचित उपचार हमारा !
दिये सदा तुमने बहुविध सुख,
मिले तुम्हें हमसे दुख ही दुख;
तो भी विमुख कभी न रहे तुम, यह काम कम उपकार तुम्हारा !
स्थिर इस जग का प्यार न पाया;
मिली मोह की चंचल छाया;
किन्तु मुड़ा जब, निश्चल निर्मल मिला स्नेह–संसार तुम्हारा !
सुख में हमने तुम्हें भुलाया,
दुख में तुमने पास बुलाया,
हृदय जानता है केवल यह कितना है आभार तुम्हारा !
झूठे सुख से नित सम्मोहित,
हम न सोच पाते अपना हित;
ठुकराया हमने आमन्त्रण प्रियतम ! कितनी बार तुम्हारा !
हरदम प्रीति तुम्हारी बरसी,
पर अचेत यह आत्मा तरसी;
खुला हुआ था जाने कब से करुणामय दरबार तुम्हारा !
जबसे परखी प्रीति तुम्हारी;
निज आत्मा–निधि तुम पर वारी;
हम बिक चुके तुम्हारे हाथों अब तो है अधिकार तुम्हारा !

चरणस्पर्श एवं चरणवन्दन का महत्व

लेखक—डॉ० गयाप्रसाद शास्त्री

भारतीय आचार–परम्परा में चरण–स्पर्श का विशेष महत्त्व है। आचार एवं व्यवहार भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। लौकिक व्यवहार में जिनको वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, धर्मवृद्ध, सम्बन्धीवृद्ध आदि समझा जाता है, उन प्रवरों के अवरों द्वारा चरण–स्पर्श करने का विधान है। प्रातःकाल में शय्यात्याग के पश्चात् प्रत्येक अवर को अपने प्रवर के समीप जाकर उनके चरण स्पर्श करके अभिवादन करना चाहिये। इस व्यवहार से अवरों की आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति की वृद्धि मानी गयी है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

अभिवादन प्रक्रिया में चरण–स्पर्श ही मुख्य है। वृद्धों में माता, पिता, गुरु एवं उनके समकक्ष व्यक्ति ही मान्य हैं। इनके अतिरिक्त तपस्वी, संन्यासी, साधु–महात्मा सभी के लिये वन्दनीय हैं। पर अभिवादन के अलग–अलग प्रकार हैं। चरण–स्पर्श उन्हीं प्रवरों का करना चाहिये जिनका सामीप्य सुलभ है। जिनका शरीरतः सामीप्य सुलभ नहीं है उनके प्रति अपनी श्रद्धा, कृतज्ञता आदि का 'ज्ञापन' चरण–वन्दन सूचक शब्द से होता है। चरण–वन्दन मानसिक स्पर्श है। मानसिक संस्पर्श से मन में निर्मलता आती है। तभी तो संत–महात्माओं ने इसकी उपयोगिता मानी है—

'चरन कमल बंदौं हरिराई।' (सूरदासजी)
'बंदौ गुरु पद पदुम परागा।' (गो० तुलसीदासजी)

यहाँ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि आचार में चरण–स्पर्श का ही इतना अधिक महत्त्व क्यों है ? पारस्परिक प्रणाम–व्यवहार अनेक प्रकार के हैं। चरण स्पर्श उन सभी का आधार है। प्रपंचात्मक सृष्टि पंचमहाभूतों से ही उत्पन्न हुई है। वे उसके उसी प्रकार उपादान कारण हैं, जिस प्रकार धागा वस्त्र के उत्पादन के लिये। जो समस्त सृष्टि का उपादान कारण है, वही पिण्ड का उपादान कारण होगा। मानव–शरीर भी पंच महाभूतों से उत्पन्न होता है, पंचमहाभूतों में सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश से वायु का प्रादुर्भाव होता है, इसी प्रकार वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी होती है।

मानव शरीर के गठन में इन पाँचों तत्वों से क्रमशः पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में आकाश से श्रवण, वायु से त्वचा, अग्नि अथवा तेज से नेत्र, जल से जिह्वा और पृथ्वी से नासिका की उत्पत्ति होती है। श्रवणेन्द्रिय आकाश के गुण शब्द को ग्रहण करती है, नेत्रेन्द्रिय अग्नि के गुण रूप को, रसनेन्द्रिय जल के गुण रस को,

घ्राणेन्द्रिय पृथ्वी के गुण गन्ध को और त्वगिन्द्रिय वायु के गुण स्पर्श को। उपर्युक्त ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी हैं। इनमें से एक-एक कर्मेन्द्रिय अपनी विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय से सम्बद्ध है। श्रवणेन्द्रिय की कर्मेन्द्रिय जिह्वा है। जिह्वा से ही शब्दों का उच्चारण होता है। त्वगिन्द्रिय की कर्मेन्द्रिय हाथ है। यद्यपि त्वगिन्द्रिय सम्पूर्ण शरीरवर्ती है। अर्थात् सम्पूर्ण शरीर को स्पर्श का बोध होता है, फिर भी हाथ का स्पर्श में प्रमुख योगदान है। नेत्रेन्द्रिय की कर्मेन्द्रिय चरण है। रसनेन्द्रिय की कर्मेन्द्रिय का अपनी विशेष कर्मेन्द्रिय से सीधा सम्बन्ध है।

साधना की दृष्टि से ज्ञानेन्द्रिय के शिथिल अथवा निष्क्रिय होने पर कर्मेन्द्रिय स्वतः ही निष्क्रिय हो जाती हैं रसनेन्द्रिय स्वाद की ज्ञानेन्द्रिय है। इसलिये भारतीय साधना-पद्धतियों में स्वाद-शिथिल करने की दृष्टि से स्वाद के मूल लवण का परित्याग किया जाता है। इससे वैराग्य में वृद्धि होती है।

ज्ञानेन्द्रिय नेत्र का सम्बन्ध अपनी विशेष कर्मेन्द्रिय चरणों से है। चरण शब्द चलनार्थक चर धातु से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय करने से बनता है गति का प्रमुख साधन चरण है। मानवचरण मिट्टी के ढेले के समान गतिहीन जहाँ का तहाँ पड़ा रहेगा, इतस्ततः कहीं भी न जा सकेगा यदि नेत्र का सहारा उसे न प्राप्त हो। मार्ग चलने वाला व्यक्ति यदि एक क्षण के लिये भी पलक डालकर देखना बंद कर लेगा तो चरण भी मार्ग में आगे न बढ़ेंगे। जब तक नेत्रेन्द्रिय आवरणरहित होकर रूप को ग्रहण करती रहेगी, चरण भी गति की निरन्तरता को स्थिर रख सकेंगे।

नेत्रेन्द्रिय तेज की इन्द्रिय है। लौ में अग्नि तेज का प्रतीक है। पंचमहाभूतों में उसका प्रमुख स्थान है। वह सूक्ष्म और स्थूल तत्वों में मध्यस्थ है। उसका एक नाम पावक भी है। वह अपने सम्पर्क में आने वाले वस्तुजाल को अपने रूप में परिणत कर देता है। अग्नि की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ऊर्ध्वगति है। सभी परिस्थितियों में अग्नि की गति ऊर्ध्व ही रहती है। पार्थिव और जलीय तत्व अग्नि के माध्यम से ऊर्ध्वगति पाकर सूक्ष्म तत्वों और ऊर्ध्व लोकों की ओर अग्रसर होते हैं। अग्नि को समर्पित होने वाला पदार्थ ऊर्ध्वगति प्राप्त कर शीघ्र वायु में फैल जाता है। वायु का आवरण ब्रह्माण्ड में चतुर्दिक है। भारतीय आचार-पद्धति में हवन और दाह संस्कार इसलिये अग्निद्वारा होते हैं।

तेज की प्रधानता के कारण ही सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को रूप मिलता है रूप में ही जगत् की स्थिति है। **'नाम रूप दुइ ईस उपाधी'** के अनुसार यह जगत् नाम रूपात्मक है। फिर भी रूप की अपेक्षा नाम गौण है। रूप ही दोनों में प्रमुख है। नेत्रेन्द्रिय रूप को ग्रहण करती है। योग-साधना में भी आँख का उल्लेखनीय स्थान है। पलक बंद करते ही प्रत्याहार की स्थिति हो जाती है। प्रत्याहार में जगत् का निवर्तन हो जाता है।

सृष्टि में अग्नि, सोम और सूर्य तेज के प्रतीक हैं। विराट्, जो ज्योतियों का भी ज्योति है,

उसी से सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है। सूर्य विराट् के नेत्र से उत्पन्न हुआ है और चन्द्रमा मन से। **'चन्द्रमा मन सो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।'** इस पृथ्वी की चराचर सृष्टि का कारण सूर्य ही है। जगत् की स्थिति और गति सूर्य से ही है। मनुष्य की स्थिति और गति का कारण भी तेज ही है। तेज के प्रतीकों में अग्नि वैराग्य का प्रदाता, सूर्य ज्ञान का कारण और चन्द्रमा भक्ति का उत्पादक है। शरीर में नेत्र तेज के स्वरूप हैं। इसी स्तर पर चरणस्पर्श की वैज्ञानिकता समझी जा सकती है।

वृद्धों के चरण–स्पर्श करने का भी निश्चित विधान है। चरणों पर मस्तक रखकर चरण–स्पर्श करना आत्यन्तिक विनम्रता का प्रतीक हैं चरण–स्पर्श करने वाला प्रवर व्यक्ति के दोनों मिले हुए चरणों पर मस्तक निक्षेप करता है। इसके अतिरिक्त पैर छूने वाला अपने दोनों हाथों से वृद्ध के दोनों चरणों का एक साथ स्पर्श करता है। **चरण-स्पर्श करने में यह ध्यान रखना आवश्यक है। कि दाहिने हाथ से दाहिने चरण का स्पर्श किया जाय और बायें हाथ से बायें चरण का।** भारतीय आचार–शास्त्र में यह मान्यता है कि इस चरण–स्पर्श की प्रक्रिया से वृद्ध से तेज की विद्युत चरण–स्पर्श करने वाले अवर में प्रवेश कर जाती है। जिससे उसको प्रसन्नता तो सद्यः प्राप्त होती है, उसकी साधना में भी प्रगति होती है।

इस अवसर पर यह तर्क भी प्रस्तुत हो सकता है कि तब चरण–स्पर्श करने के स्थान में चक्षु–स्पर्श ही क्यों न किया जाय ? विद्युत की अवतारणा बिना स्पर्श के सम्भव नहीं है। स्पर्श–सम्बन्ध से ही उसकी प्राप्ति सम्भव है। नेत्र में तेज अपने प्रखर और तीव्र रूप में विद्यमान है। नेत्र में स्पर्श की योग्यता नहीं है, अतः उसका स्पर्श सम्भव नहीं है। दूसरे प्रखर तेज का साक्षात् ग्रहण सम्भव नहीं है। नेत्र तेज की प्रखरता का पता क्रोध के अवसर पर लगता है। इसी प्रखरता के कारण वृद्धों के मुख की ओर देखने और उनकी आँख से आँख मिलाने का पूर्ण निषेध है। चरण स्पर्श क्षम भी है और तेज से साक्षात् सम्बद्ध भी।

चरण–स्पर्श करने के फल का पहले उल्लेख हो चुका है कि इससे अवर की आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति में वृद्धि होती हैं आयु और शक्ति सुन्दर स्वास्थ्य के परिणाम है। सुन्दर स्वास्थ्य जठराग्नि के प्रदीप्त होने से प्राप्त होता है। जिह्वा मूल में भी अग्नि का निवास है। फलस्वरूप वाणीवैशद्य और वाणी वैमल्य भी प्राप्त होता है। यही विद्या–वृद्धि का लक्षण है, बुद्धि भी प्रकाश स्वरूप है। बुद्धि–नैर्मल्य से ज्ञान–प्राप्ति होती है। कीर्ति सभी का सम्मिलित परिणाम है। मन का वैमल्य चरण–स्पर्श का तात्कालिक परिणाम है।

संक्षेप में यही वैज्ञानिक विचार चरण–स्पर्श का आधार है। इसीलिये सभी भारतीय परिवारों में बिना हिचक व संकोच के छोटे–छोटे बालकों को प्रातःकाल उठकर सभी गुरुजनों के चरण–स्पर्श करने की शिक्षा दी जाती है।

***

प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्य की सुरक्षा

(डॉ० नरेश झा)

मानव–जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्य प्राप्ति के लिये हमारे तपःपूत ऋषि–महर्षियों ने अनेक उपाय शास्त्रों में निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायाम की साधना भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिये ही नहीं, अपितु शरीर की शुद्धि तथा आरोग्य–लाभपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिये भी है। इसकी उपयोगिता तो इसी से सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातञ्जलादि योगग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्रायः समस्त पुराणों में अनेकत्र वर्णित है। श्रौतःस्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में प्राणायाम-विधान की आवश्यकता होती है; क्योंकि दैनिक कृत्य–संध्या–वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदि में प्रथमतः प्राणायाम का ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजन के लिये ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीर की शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति भी होती है।

अतः इस महिमामय शरीर–रक्षक प्राणायाम के विषय में जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानव का पुनीत कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदों के योग से बना है– प्राण और आयाम। इन दोनों पदों में दीर्घसन्धि करने पर प्राणायाम शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्द का अर्थ है– अपने शरीर से उत्पन्न वायु और आयाम का अर्थ है– निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राण वायु को रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणों में कहा गया है कि–

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्।।

अर्थात् प्राण वायु का निरोध करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातञ्जलयोग दर्शन में इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन में स्थित होकर बाह्य वायु का आचमन– श्वास और कोष्ठगत वायु का निःसारण– प्रश्वास, इन दोनों का गति–विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायाम की सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षण के द्वारा कुंभक में तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचक में आये अतिव्याप्ति दोष के निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास–प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिये।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणों में इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओं में प्रथम का ही आयाम–निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओं का प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राण में ही हो। कहीं पाँचों में प्राथमिक दो प्राण–अपान वायु का आयाम और कहीं पाँचों वायुओं का एक स्थान में धारण प्राणायाम माना गया है। इतना ही नहीं, कहीं–कहीं तो दस प्रकार के

वायु का क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसों का प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायाम का विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्नि पुराणों में केवल प्राण के ही आयाम से निर्दिष्ट है।

बौधायन धर्मसूत्र–वृत्ति में श्वास–निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है। इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्दमार्कण्डेय–पुराणों में प्राण–अपान–वायु का निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानों में प्राणायाम का लक्षण इस प्रकार–

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।

अब आइये–प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान– इन पाँच वायुओं के निरोध पर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्प में निर्दिष्ट है–

नासिकापुटमङ्गुल्या पञ्चभिर्वायुरोधनैः।
शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्।।

अर्थात् अंगुली से नासिका–पुट को बंदकर पाँच– वायु (प्राणादि) के निरोध से धीरे–धीरे निःशब्द होने को प्राणायाम जानना चाहिये।

इन पाँच प्रधान वायुओं के अतिरिक्त वेदव्यास जी ने शिव और अग्नि पुराण में शरीर–संचालन–हेतु पाँच और नवीन वायुओं का समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचों के अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक पाँच वायु शरीर में विभिन्न कार्यों के लिये प्रवाहित होते हैं। इनमें धनञ्जय वायु शरीर में सर्वव्यापी है। इनका क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्द पुराण से भी होती है। वहाँ कहा गया है कि–

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।
गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते।।

अर्थात् सब ओर विचरण करने वाले प्राणादि वायु का गुरु के द्वारा उपदिष्ट रीति से जो एक देश में धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोग प्रदीपिकाकार ने कहा कि–

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जजीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।

अर्थात् जब तक शरीर में प्राणादि वायु स्थित है, तभी तक जीव का जीवन है। प्राण वायु के निकल जाने पर मरण सुनिश्चित है, अतः वायु का निरोध करना चाहिये। इस सम्बन्ध में योगशास्त्र का उद्धरण देते हुए धर्म–विज्ञान में कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीर की प्रधान शक्तियाँ होती हैं, वे ही संसार के रक्षक हैं, उन्हें वश में करने पर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते हैं। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म–भेद दो प्रकार के होते हैं। इन प्राणों के ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम की उपयोगिता तथा उससे शारीरिक स्वास्थ्य लाभ

शरीर की रक्षा के लिये जिस प्रकार अन्न की उपयोगिता है, शरीरस्थ रोग नाश के लिये जैसे औषधियों का विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्याभ्यन्तर) रोगों के समूल नाश के लिये प्राणायाम का प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है–

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः।।
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्।।

अर्थात् समुचित प्राणायाम द्वारा सभी रोगों का नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास से सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेष रूप से हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस)– का फूलना, सिर, कान एवं नेत्र में वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशय की पुष्टि ब्रह्मनारदीय पुराण से भी होती है।

यथा–

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः।।

आशय यह है कि मतवाले हाथी के समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु) को अभ्यास द्वारा धीरे–धीरे जीतना चाहिये अन्यथा भयंकर महारोग होने की आशंका रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धति से तथा गुरु के द्वारा उपदिष्ट परम्परा से किये गये प्राणायामों से सब रोग नष्ट हो जाते हैं और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

अतः प्राणायाम करने में प्राचीन परम्परा का पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्परा के पालन में स्थान और काल आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है–

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामं च साधयेत्।।

अर्थात् प्राणायाम–साधना में उपयुक्त स्थान, काल, परिमित आहार और नाडी–शुद्धि (वात–पित्त–कफकी) आवश्यक है।

रोग–नाश के अतिरिक्त मानसिक संतुलन रखने में भी प्राणायाम का महान् उपयोग होता है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से चित्त में एकाग्रता आती है और इसके लिये पातञ्जलोक्त **'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य'** अर्थात् कोष्ठगत वायु का नासिका (नाक)–के पुटों द्वारा विशेष प्रयत्न से प्रच्छर्दन–वमन, विधारण –विशेषरूप से धारण करके प्राणायाम करे। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्री मद्भागवतादि मान्य ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन काल में प्राणायाम के बल से ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रि ने ऋक्षकुल पर्वत पर सौ वर्ष तक प्राणायाम के बल से केवल वायु–पान करते हुए एक पैर पर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमद्भागवत तथा घेरण्ड संहिता में कहा गया है–

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः।।

x x x

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी।।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायाम से आकाशगमन की शक्ति आती है, प्राणायाम से समूल रोग–नाश होता है, शक्ति बढ़ती है, मानसिक संतुलन ठीक रहता है, चित्त में आनन्द की प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकार से नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं, प्राणायाम के सेवन से शरीर में फेफड़े (फुफ्फुस)– की शक्ति बढ़ती है, रुधिर की शुद्धि होती है। समस्त नाडी–चक्रों में चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायाम के सेवन से स्वस्थ एवं निरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर–मानव जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

***

गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे

(विजय प्रकाश पालीवाल, सवांई (एत्मादपुर आगरा)

गुरुदेव श्रीगुरुदेव पुकारा करेंगे।
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।।

नयनों में प्यारी झाँकी बसाकर
मन मन्दिर में उनको बिठाकर
असुओं से चरण पखारा करेंगे
गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे।
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।।

इक दिन सुनेंगे वो विनती हमारी
सुध लेंगे आकर जगत हितकारी
हम पलकों से पन्थ बुहारा करेंगे
गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।।

भूल के सुध निज तन मन की
छुप-छुप कुंजों में गुफा की
गुरुदेव की वाट निहारा करेंगे
गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे।
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।।

याद में उनकी रोते रहेंगे
अश्कों की माला पिरोते रहेंगे
जीने का हम यूँ सहारा करेंगे
गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।।

रहमत सदा बरसाते हैं गुरुदेव
बिगड़ी सबकी बनाते हैं गुरुदेव
हम भी दर पे दामन पसारा करेंगे
गुरुदेव श्री गुरुदेव पुकारा करेंगे
श्री सिद्धगुफा की रज में गुजारा करेंगे।

गुरुदेव की है याद आई

गुरुदेव की है याद आई, अश्कों को बहने दो।
राहों में मुझे उनकी सजदे तो बिछाने दो।।
जो चाहो सज़ा देना ऐ गुरुदेव के दरबानो।
चौखट पर जरा उनकी मुझे सर तो झुकाने दो।।
सुनता हूँ मेरे गुरुदेव नजरों से पिलाते हैं।
नज़रों से मुझे इनकी नजरें तो मिलाने दो।।
रूठता और तड़पता है बाकी अदा इनकी।
वो रूठे रहें चाहे मुझको तो मनाने दो।।
दुनियाँ में अगर मेरी कोई और नहीं सुनता।
जो सबकी सुनता है उसको तो सुनाने दो।।

गुरुदेव भक्त के बस में

—डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी (गजरौला)

बात सन् १९७० की है। एम.ए. परीक्षा पास किये हुए १ वर्ष बीत चुका था। मैं श्री गुरुदेव की शरण में जून १९५६ में आ चुका था। एक दिन, प्रथम श्रेणी प्राप्त न करने के कारण नौकरी नहीं मिल रही, इसी विषय को लेकर बहुत प्रतारणा हुई। मन क्षुब्ध था। अतः संकल्प बना कि यदि १९७० की गुरुपूर्णिमा तक नौकरी नहीं मिली तो उस दिन मित्र से पैसे उधार लेकर भली भाँति पूजन करके श्री प्रभुजी और श्री गुरुदेव के चित्र यमुना नदी में प्रवाहित कर दूँगा। इसे बाल बुद्धि ही कहा जायेगा।

नियमित आरती पूजन चलता रहा और अचानक इन्टरव्यू लैटर मिला। तैयारी और हड़बड़ी में शाम को आरती करके चल दिया। अलीगढ़ स्टेशन पर पता लगा कि ट्रेन की छत पर गंगास्नान वाले यात्री चढ़े हुए हैं और घोषणा के उपरान्त भी नहीं उतर रहे तो भी यह ध्यान नहीं आया कि कल गुरुपूर्णिमा है।

दोपहर १२ बजे से रामनगर–नैनीताल में इंटरव्यू था। १२ बजे मुरादाबाद में था। व्यग्रता थी, बेचैनी थी, प्रभु स्मरण था परन्तु दिन याद नहीं आ रहा था। किसी तरह शाम ४ बजे के उपरान्त कालेज पहुँचा। चपरासी ने बताया कि इंटरव्यू समाप्त हो चुके हैं और चयन समिति चाय पी रही है। फिर भी श्री प्रभुजी का स्मरण करके पहिले से तैयार स्लिप अन्दर भिजवा दी। उत्तर आया बिठाल लो, चाय आ गई। ऊहापोह थी—अब क्या होना है। रस्म के लिए बुला लिया जाना है और थैंक्यू कहकर विदाई।

बुलावा आया। बैठने का आदेश हुआ और पहिला वाक्य सुनकर ही आश्चर्य हुआ—"कि आपका ही इन्तजार था।" कानों को विश्वास नहीं हुआ। मन ने सोचा कि यह लेट आने का व्यंग वाक्य तो नहीं। परन्तु अगले क्षण ही अनिश्चितता दूर हुई जब चयन समिति के अध्यक्ष ने प्रधानाचार्य से कहा कि नियुक्ति पत्र पर इनका नाम लिखो। नियुक्ति पत्र पहिले से टाइप किया हुआ रखा था। बस मेरा नाम और सचिव के हस्ताक्षर होने थे। तब भी दिन याद नहीं आया।

मैंने समिति के सदस्यों से वापसी का साधन पूछा। अध्यक्ष ने बताया कि उनकी बस ५ बजे जायेगी और चपरासी को बुलाकर आगे एक सीट रिजर्व करने को कहा। वहाँ पहुँचकर यात्रियों की बातचीत से पता लगा कि पवित्र कोसी नदी में गुरुपूर्णिमा पर स्नान करके लौट रहे थे। सुनकर आँखों में आँसू आ गये। श्री प्रभूजी कितने कृपावान हैं—मेरे संस्कार कितने प्रबल थे कि अंतिम पूजन जीवन की अंतिम श्वांस से होना है।

वे करुणा सागर कितने कृपावान हैं कि भावना के वशीभूत होकर मूढ़ चिन्तन को दृष्टिगत न रखते हुए अपने पर सदैव कृपादृष्टि करते रहते हैं।

मैं आज भी जो हूँ उन करुणासागर की कृपा है। अपनी बात को, सवाई धाम को तीर्थ स्थल मानते हुए, दो पंक्तियों के साथ समाप्त करता हूँ—

तमन्ना जिसकी रखता हूँ वही अंजाम हो जाये
सवाई में प्रभूजी मेरे दिल की शाम हो जाये।।

***

कानपुर में अष्टम सिद्ध साधना शिविर सम्पन्न

प्रेमचन्द्र सविता, कानपुर

श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल, कानपुर के वार्षिकोत्सव पर वर्ष २००२ दिनांक १८ से २१ अक्टूबर, २००२ के बीच आयोजित अष्टम सघन शिविर परम कर्णार्णव प्रातः स्मरणीय भगवान श्री सद्गुरू देव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की कृपा से योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पावन चरण कमलों में सादर समर्पित यह महापर्व

बहुत धूमधाम एवम् हर्षोल्लास के वातावरण में सम्पन्न हो गया। यह साधना शिविर श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल, कानपुर योग संदेश के रूप में मनाता है और इसके माध्यम से श्री प्रभु जी द्वारा इस अवनी मण्डल पर पदार्पण, प्रचारित व प्रसारित योग व उनकी कृपा की हमें याद दिलाता है और इसीलिए इसे योग संदेश नाम दिया है।

इसमें कानपुर शहर एवम् देहात के अलावा, वाराणसी, सवाई आश्रम, झाँसी, काल्पी, कासगंज, अलीगढ़, हापुड़, गोरखपुर, दिल्ली, कांगड़ा (हिमांचल प्रदेश), हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र एवम् भारत के अन्य शहरों से असंख्य योग जिज्ञासुओं ने आकर इस पर्व में भाग लिया। दिनांक १६ अक्टूबर, २००२ को बड़े पैमाने पर सामूहिक अनुष्ठान का कार्यक्रम का आयोजन सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भूत भावन भगवान शंकर जी के पंचाक्षरी मंत्र का १२ घण्टों का अखण्ड सामूहिक जाप किया गया, जिसमें झाँसी से पधारे श्री कृष्ण कांत झा भैया की संगीत टोली का पूर्ण सहयोग मिला। कानपुर मण्डल द्वारा आयोजित इस साधना शिविर की विशेषता यह रहती है कि प्रातः ५ बजे से रात्रि ९.०० बजे तक का कार्यक्रम पूरी तरह वैसा ही चलाया जाता है जैसा आनन्दकन्द श्री सदगुरूदेव भगवान जी चलाया करते थे। इस कार्यक्रम की विवेचना करने के अभिप्राय से इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है—

१. पहला भाग गुरू भाईयों के लिए

इसमें प्रातः ५ बजे मंगला आरती, ध्यान, जीवन तत्व साधन, श्रीमद्भगवत गीता पाठ, आदि। इन सभी कार्यक्रमों की विशेषता यह रहती है कि इनमें भाग लेने के लिए दूर दराज के भाई लोग कार्यक्रम स्थल पर ही रात्रि में विश्राम करते थे चाहे भले उन्हें केवल दरियों पर ही क्यों न सोना पड़े। प्रातः की

आरती से लेकर ध्यान तथा जीवन तत्व साधन करने तक उपस्थित जन समुदाय को देखकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता था और भाइयों के श्रीमुख से स्पष्ट सुना जाता था कि श्री प्रभू जी की अपार कृपा है।

२. आम जनता के लिए

गुरु भाईयों के कार्यक्रम जैसे प्रातः की मंगला आरती, ध्यान आदि ६.३० बजे प्रातः समाप्त होने के बाद फिर जनहितार्थ कार्यक्रम प्रारम्भ होते थे, जिनमें नेति एवं जीवन तत्व साधन आदि दिखाया जाता था। इसके बाद प्रतिदिन श्री प्रभु जी की आरती और स्वल्पाहार के बाद प्रवचनों की श्रृंखला प्रारम्भ होती थी और सम्पूर्ण कार्यक्रम पूर्ण साधनामय होता था।

उसके बाद सामूहिक आरती होती थी। आरती के पश्चात स्वल्पाहार लेने के बाद भक्ति संगीत के कार्यक्रम और योग परक प्रवचनों का कार्यक्रम सम्पन्न होता था और दोपहर ठीक १२.३० बजे भोजनावकाश तथा विश्राम आदि के बाद ठीक ३.३० बजे बहनों का महिला संगीत का कार्यक्रम प्रारम्भ होता था। सायं ५ बजे से ६ बजे तक भाइयों का भक्ति संगीत पर आधारित कार्यक्रम चलता था। उसके बाद प्रवचनों की श्रृंखला प्रारम्भ होती थी और यह रात्रि ९ बजे तक चलती थी।

इस कार्यक्रम में जहाँ श्री प्रभु जी के परम कृपापात्र संगीत की दुनियाँ की हस्ती श्री कृष्णकांत झा भाई जी द्वारा लाई गई प्रभू श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय, झाँसी की बच्चों की संगीत मण्डली द्वारा जपने वाली ॐ नमः शिवाय की ध्वनि का कोई जवाब नहीं था और साथ ही उनके भजन (चुनरिया झीनी रे झीनी) तो वहीं पर कांगड़े से पधारे पुरी बन्धुओं बाबा को मन में बसाय के (श्री विजय पुरी) एवं मैंने रंग ली आज चुनरिया गुरुवर तेरे रंग में (श्री पवन पुरी जी) के भजनों ने साधना की समा ही बांध दी थी और उपस्थित सभी भाई लोग आँखें बन्द करके हमारे आराध्य जी के चरण कमलों में खो जाते थे और पूरा प्राँगण भीनी भीनी मधुर खुश्बू से भर जाता था। सभी उपस्थित बहनें और भाई मदमस्त हो जाते थे और सभी को यह लगता था कि वह इस दीन दुनियाँ में न होकर सिद्धाश्रम में उपस्थित है।

इतना ही नहीं भाई श्री राम गोपाल जी

द्विवेदी (अन्तराष्ट्रीय कव्वाल) जी की कव्वाली मण्डली का भी कोई जवाब नहीं था और वे भी कार्यक्रम में चार चाँद लगाने में पीछे नहीं हटे

(करम कर दो मेरे गुरुवर मेरी झोली खाली है) और जब उन्हें यह लगा कि उनकी मण्डली को समय कम मिला है तो झाँसी मण्डली के समय में जाकर गाने लगे। बहनों के भी भजन अत्यधिक मार्मिक और गुरु भक्ति से ओतप्रोत थे। वाराणसी से पधारी श्रद्धेय भाई श्री आत्मा प्रसाद सिंह जी की पुत्र–वधु के भजन कहीं पीछे नहीं थे। बहन जी के गाये भजन (गुरु गुरु तो सब कोई कहें पर गुरु को ध्यावे कोई कोई) ने आचार्य श्री चन्द्रहास जी का मन मोह लिया और वह कई घण्टों लगातार ध्यानस्थ रहे और उन्होंने अपने प्रवचनों में इस भजन को बहुत विस्तार से लिया।

अब साधना और प्रवचन का आलम देखें तो हमें यह बताने में खुशी होती है कि इस वर्ष के कार्यक्रम के मुख्य वक्ताओं में लखनऊ से पधारे ब्रह्मचारी भाई श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल, नई दिल्ली से पधारे भाई आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, नाहन (हिमांचल प्रदेश) से पधारे भाई श्री पूर्णचन्द्र जी पंत शास्त्री, गोरखपुर से पधारे भाई डाक्टर विजय सिंह, इलाहाबाद से पधारे भाई श्री जनार्दन पांडेय जी आदि थे। सभी वक्ताओं के प्रवचन गुरु भक्ति से भरे हुए और योग के रस में पूर्णतया डूबे हुए थे। भाई श्री पालीवाल जी ने योग और गुरु भक्ति पर, आचार्य जी ने कुण्डलिनी योग, अनुष्ठान एवं सदशिष्यता पर, भाई श्री पूर्णचन्द्र जी पंत जी ने अष्टांग योग पर, भाई श्री जनार्दन पाण्डेय जी ने योग का मानव जीवन में महत्व आदि पर अपना प्रवचन किया तो वहीं पर भाई डाक्टर विजय सिंह ने श्री प्रभू जी की लीलाओं को हम सभी लोगों को बड़े ही मार्मिक व्याख्या के साथ बताया।

इस तरह यह चार दिवसीय साधना शिविर जो श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल कानपुर का योग संदेश २००२ है, का समापन दिनांक २१ अक्टूबर, २००२ को रात्रि ९ बजे श्री प्रभू जी की आरती के साथ, अगले वर्ष के कार्यक्रम में तीन दिनों के अनुष्ठान के संकल्प के साथ हो गया तथा श्री प्रभू जी के चरणों में अर्पित पुष्प अगले दिन दिनांक २२–११–२००२ को पवित्रतम तीर्थ स्थल विठूर में माँ भागीरथी जी की बहती अविरल धारा में विसर्जित कर स्नान किया गया। पुष्प विसर्जन के लिए कानपुर मण्डल के भाइयों के अलावा श्री भुवनेन्द्र जी झा, आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा तथा भाई श्री पवन पुरी जी आदि शामिल थे।

***

महिमामयी गौमाता

"गाय के पृष्ठ भाग में ब्रह्माजी का, गले में विष्णु भगवान का, मुख में शिवजी का और रोम–रोम में ऋषि महर्षि देवताओं का वास है। और आठ ऐश्वर्यों को लेकर के लक्ष्मी माता गाय के गोबर में बसती है। गाय की बहुत बड़ी महिमा है। जहाँ गाय के चरण पड़ते हैं, वहाँ देवताओं का वास रहता है। भारत को समृद्धशाली बनाने के लिए गोरक्षा अत्यन्त आवश्यक है।"

—योगिराज श्री देवरहा बाबा

योगी जीवन के वरणीय मानदण्ड

—श्री 'दिव्य'

या निशा सर्वभूतानां
तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि
सा निसा पश्यतो मुनेः।।

—गीता २/६९

योग पथ के साधकों के लिए जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने गीता शास्त्र में अनेक स्थानों पर या यों कहिए कि गीता के १८ अध्यायों में से प्रत्येक अध्याय में जीवन के महत्त्वपूर्ण मानदण्डों का वर्णन किया है। विशेषकर योगी जीवन के मानदण्डों का। ऊपर का श्लोक इन्हीं मानदण्डों में से एक है।

गीता शास्त्र के गहराई से अध्ययन, विश्लेषण एवं विवेचन करने वाले प्रायः सभी विद्वानों का कथन है कि श्रीमद्भगवद् गीता समूचा ही जीवन–शास्त्र है। जीवन को किस प्रकार सुख–समृद्धि से सम्पन्न और जगत के क्लेशों से रहित बनाया जा सकता है और कैसे जीवन के अन्तिम लक्ष्य अभ्युदय और निश्रेयस की प्राप्ति की जा सकती है, इसी का वर्णन तो गीता में विस्तार से किया गया है। गीता के सूत्रों के अनुसार जीवन का निर्माण कर लेना ही प्रत्येक मोक्षाभिलाषी के लिए करणीय दायित्व बताया गया है। फिर इस दायित्व का निर्वाह चाहे हम सब स्थित–प्रज्ञ बनकर करें या ज्ञानयोगी, ध्यान योगी, भक्त योगी अथवा कर्मयोगी बनकर या आसुरी सम्पदा से बचकर दैवी सम्पदा को अपनाकर करें। यह सभी प्रयास योगी जीवन के मानदण्ड ही कहे जा सकते हैं।

धनुर्धारी अर्जुन को अपने क्षत्रियोचित जिस स्वधर्म का पालन रणक्षेत्र में करना था उससे विमुख होकर वह गहरे विषाद में जा पड़ा था क्यों ? इसलिए कि वह इस महासागर में सामने खड़े हुए जिन प्रतिपक्षियों का वध करने को उद्यत हुआ है ये सब पराये तो नहीं किन्तु अपने ही जन, हितैषी और निकटतम नाते–रिश्तेदार ही तो हैं। फिर तुच्छ और क्षणिक विनाशी राज–सुख भोग के लिए इन्हें मार डालने का महापाप मैं क्यों अपने सिर पर लूँ। यह विचार ही अर्जुन के मन की हीनता और विषाद का कारण बनकर उसके सामने आ खड़ा हुआ था। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन के मन में समाये विषाद के इस मूल कारण को जान रहे थे कि अर्जुन की यह विषादमय अवस्था उसके दय की क्षुद्रता, दौर्बल्य और कायरता का द्योतक बन कर उसके सारे यशस्वी जीवन को कलंकित करने वाली सिद्ध होगी, तथा देश के गौरवमय इतिहास को भी धूमिल कर डालेगी। इसलिए उसे प्रतारणा देते हुए यही दिशा दर्शन देना चाहिए।

भगवान का यहाँ दिया गया विमल विचार ही तो गीता–शास्त्र है, जो न केवल अर्जुन का मार्ग–दर्शन बनकर सामने आया बल्कि पूरे मानव–समाज ने इसे अपना दिशा–दर्शन समझकर आज तक अपनाया हुआ है और आगे भी अपनाया जाता रहेगा।

हमने ऊपर कहा है कि अर्जुन की मनोभूमि पर विषाद के अंकुर उग आने पर ही वह भगवान से मार्गदर्शन पाने का पात्र बन पाया

था और जिस प्रकार माता कुन्ती देवी ने भी राजसूय यज्ञ के उपरान्त भगवान श्री कृष्ण से घोरतम विषाद और विपत्तियों के मिलते रहने का वरदान माँगकर इस अनुभूति सत्य को संसार के सामने स्पष्ट करने का साहस प्रकट किया था कि भगवत् कृपा तभी प्राप्त होती है जब मानसिक विषाद की चरम–सीमायें मानव को दिशाहीन बना दिया करती है।

भारत में अनेक अध्यात्मिक सन्तों के जीवन को यदि हम देखें तो पायेंगे कि उनका उत्थान और उन्नयन भी घोरतम विषाद से आक्रान्त हो जाने के बाद ही हो पाया था। भक्त सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास और राजस्थान के राज घराने की भक्त कवित्री मीराबाई के जीवन–चरित्र भी इस सत्य का प्रतिपादन करते हैं कि विषाद और क्लेशमय वातावरण ने ही तो इन्हें ख्याति के गलियारों में पहुँचाया था।

कौन नहीं जानता कि रत्नावली के एक दोहे के कड़ुएँ वाक्य ने ही तुलसी के मन में रामभक्ति के बीज बोये थे और सूरदास को नयन विहीन होने का गहरा विषाद ही उन्हें दिव्य दृष्टा बनने का कारण बना था और महाकवि कालीदास को भी पत्नी की प्रतारणा ही तो उन्हें महापण्डित बनाने का आधार बनी थी तथा राजघराने में पालित पोषित घर वालों और इतर जनों के कटुतम ताने सुनकर ही भक्त मीरा यह कहने का साहस कर सकी थी कि–

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई'।

इसे भी प्रायः सभी योग साधक जानते होंगे कि योगिराज भूर्तुहरि को राजपाट त्यागकर महायोगी बनाने का कारण अपनी प्रियतमा पत्नी के दुराचरण का विषाद ही तो बना था। और भी ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। जिन्हें हम समय और स्थानाभाव से देना नहीं चाहते।

आशय हमारा यही है कि विषाद और दुःखों का वातावरण संस्कारों के फलस्वरूप ही आया करता है। यदि यह आ जाय तो साधकों को इसका स्वागत अक्लिष्टकर वृत्ति समझकर करना चाहिए। ऐसी अक्लिष्टकर वृत्तियाँ ही उसे परम वैराग्य के लक्ष्य तक पहुँचा दिया करती हैं।

अर्जुन का विषाद ही तो रणक्षेत्र में उसके कल्याण का कारण बना था। यदि उसका विषाद न उभरा होता तो संसार गीता जैसे ज्ञानामृत से वंचित ही रह जाता।

अतः हमें यह मानना ही पड़ेगा कि हमारे जीवन मार्ग में आया हुआ विषाद भी हमें भगवान के निकट ले जाने में सहायक हो सकता है, बाधक नहीं।

प्रस्तुत लेख में इन्ही मानदण्डों की कुछ चर्चा भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में योग–प्रेमी साधकों की सुविधा के लिए अति संक्षेप में करने का हम उपक्रम कर रहे हैं।

गीता के १८ अध्यायों में से प्रत्येक अध्याय में इन मानदण्डों का उल्लेख किया गया है। और सम्भवः इसीलिए गीता के प्रत्येक अध्याय को 'योग–शास्त्र ब्रह्मविद्या' से इंगित किया गया है।

अर्जुन और श्रीकृष्ण के गीता सम्वाद के विषाद योग को यदि हम अपने जीवन में घटाकर देखें तो पायेंगे कि हमारे जीवन का आरम्भ भी तो विषाद से ही हुआ करता है।

माता के उदर में रहकर हम जिन यन्त्रणाओं को सहन करते हैं, वे यन्त्रणायें भी तो विषाद का ही रूप होती हैं। और जब हम धरती पर आ पड़े तो भी तो रोते हुए ही आते हैं। जो हमारे जागतिक विषाद का ही अंग होता है।

माना कि हमारा जन्म हमारे परिवारीजनों और पास–पड़ौस के लोगों के लिए भले ही प्रसन्नता का कारण बना हो और भले ही मंगल–वाद्यों के साथ हमारे आगमन का स्वागत हुआ हो, बधाई के गीत गाये गये हों, पर इन सबको अनसुना और अनदेखा करके हम तो रुदन के साथ ही उत्पन्न हुए थे और बाद में भी हमारी आवश्यकताएँ हमारे रोने-धोने की ध्वनि के साथ ही पूरी होती रही थीं। यों दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि मानव–जीवन रूपी गीता का आरम्भ भी विषाद से ही होता आया है।

हमारे जीवन में विषाद की यह अवस्था कभी भी सम्पूर्ण रूप से छूट नहीं पाती, अपनी आयु के साथ इसके नाम और रूप भले ही बदल जाते हों पर सर्वथा यह हमसे अलग नहीं होती। अर्जुन के बड़े और वयस्क होने पर भी इस विषाद ने उसका पीछा नहीं छोड़ा था। स्वजन मोह के रूप में यह विषाद घने कोहरे के रूप में उसके ऊपर आ छाया था और इसी ने उसे कर्तव्य विमुख बनाकर युद्ध क्षेत्र से पलायन करने के लिए उद्यत करके उसे अपकीर्ति और अपयश का भागी बनाने की पूरी तैयारी कर ली थी। यदि अर्जुन की यह विषादमयी दशा भगवान श्रीकृष्ण के सामने न आती तो गीता जैसा अमृतमय उपदेश देने का अवसर ही हाथ न आता। यों हमें मानना होगा कि विषाद भी जीवन में योग साधक के सामने उसके वरणीय मानदण्ड के रूप में ही आया करता है। और इसी को केवल विषाद नहीं किन्तु विषाद योग के नाम से पुकारा जाने लगता है।

सन्त कवियों ने इसीलिए अपने शब्दों में कहा है–

विपदा हूँ सबसे भली, जो दिन थोड़े होय।

जैसे वाक्य कहकर और इसे अक्लिष्ट वृत्ति बताकर सहन कर लेने का परामर्श दिया है। भगवत शक्ति का अनुग्रह भी इसी विषादमय अवस्था में हुआ करता है। माता कुन्ती इस शक्ति को जानती थीं इसीलिए तो जो विषाद और दुःख हेय होता है उसे वरदान के रूप में माँगा था जैसा कि हम ऊपर भी कह चुके हैं।

इस प्रकार हमें ये मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि योगी जीवन के वरणीय मानदण्ड भले ही वे योग–साधकों को उल्टी दिशा में ले जाने वाले क्यों न प्रतीत हों पर परिणाम में वे उल्टे श्रेयस्कर जीवन के आधार बन जाया करते हैं। इस लेख के आरम्भ में जो श्लोक गीता के दूसरे अध्याय से उद्धृत किया है यह भी तो जगत की पगडण्डी को छोड़कर अपनी अलग राह बनाकर चलने का परामर्श दे रहा है। श्लोक में स्पष्ट किया गया है कि सर्वसाधारण के लिए जो दिन होता है वह योगी के लिए रात होती है सर्वसाधारण के लिए जो रात होती है वह योगी के लिए दिन हुआ करता है। और यही हुआ करते हैं योगी जीवन के वरणीय मानदण्ड।

***

"संस्कार शक्ति व साधना-शक्ति" (भाग-4)

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

'संस्कार शक्ति व साधना शक्ति' नामक प्रकरण के प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग में समझाने का प्रयत्न किया गया है कि हमारी साधना में विक्षेप आने के कारण हमारे चित्त पर पड़े संस्कारों के प्रभाव भी होते हैं। बलशाली संस्कार के आगे दुर्बल संस्कार प्रभावहीन हो जाते हैं। संस्कार दस प्रकार से प्रेरित होते हैं, उन दस प्रकार पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। गर्भकालीन संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में किसी को भी आपत्ति हो सकती है कि यह आवश्यक नहीं कि माता–पिता पर ही संस्कार जाये, इसके विपरीत भी गुण–धर्म–संस्कार वाली सन्तान हो सकती है। बात एक सीमा तक सही भी है। समझने की बात है कि अपवाद हर क्षेत्र में व हर दिशा में हो सकता है। इस विस्मयकारी सृष्टि में बहुत कुछ विस्मयकारी घट सकता है, परन्तु यह सब अज्ञानता के ही कारण हमें दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः जब भी कुछ नवीन या आश्चर्य अपवाद बन कर आता है तो उसके पीछे भी परमेश्वर का बहुत बड़ा व गहरा विज्ञान खड़ा होता है। बिना कारण इस सृष्टि में कोई रचना नहीं होती। मनुष्य अज्ञानी है, इसलिए उसे आश्चर्य होता है। अन्यथा संस्कारों का विज्ञान कहीं से कहीं तक भी फेल नहीं हो सकता। यथा–

किसी भी विषय वस्तु को जब तक गहराई से नहीं परखा जायेगा, तब तक तर्क जाल में मन जाता ही है। हम जो भी कर्म करते हैं अथवा मन में विचारते हैं तो उस विचार की अधिक समय तक छाप भी हमारे मस्तिष्क में अपना प्रभाव डालेगी और संस्कार बनायेगी। मुक्ति के द्वार तक आने पर भी यदि कोई संस्कार शेष रहता है तो उसका भी बन्धन मुक्ति में बाधक है। अतः कहा गया है–

अवश्यमेव भुक्तव्यं कृतंकर्म शुभाशुभं, न भोक्तम् क्षीयते.......

अर्थात् शुभ–अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे कल्प बीत जाये और इस नियम से कोई नहीं बच सकता।

केवल विचार का भी मुक्ति के रास्ते में कितना बड़ा बन्धन है, इसे स्पष्ट करने के लिए मुझे एक कथा स्मरण हो रही है, जिसका वर्णन करना विषय को अधिक स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होगा। जैन मुनि श्री ऋषभनाथ जी के एक सौ एक पुत्र व दो पुत्रियाँ थीं। सभी पुत्र राज–काज में पूर्ण निपुण थे परन्तु सबसे बड़े दो पुत्र अति ही बलवान, संयमी व नीति निपुण थे। जिनका नाम था भरत और बाहुबली। भरत, बाहुबली से उम्र में बड़े थे और ऋषभनाथ की पहली पत्नी देवी यशस्विता के पुत्र थे। बाहुबली श्री ऋषभनाथ की दूसरी पत्नी देवी सुनन्दा से उत्पन्न हुए थे। सन्यास लेने से पूर्व श्री ऋषभदेव ने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य दिया

और सुनन्दा नन्दन बाहुबली को पौढ़नपुरा का राज्य मिला। दोनों पुत्रों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। परन्तु भरतजी को राज्य करते-करते सत्ता का मद हो आया उन्होंने चक्रवर्ती सम्राट बनने की लालसा में सम्पूर्ण भारत के राजा-महाराजाओं को अपने आधीन कर लिया। भरतजी ने राज्यकाल में उग्र तपस्या भी की थी, जिसके कारण उन्हें कुछ दिव्य अस्त्र भी प्राप्त हुए। तप से प्राप्त दिव्य अस्त्र 'चक्र' जो 'सुदर्शन चक्र' के समान था, इस चक्र के आगे कोई शत्रु टिक नही पाता था। दूसरा अस्त्र एक ऐसा 'छत्र' था, जो भीषण तूफान और वर्षा में सेना की रक्षा करता। तीसरा अस्त्र था 'दण्डरत्न' जो बड़ी-बड़ी पहाड़ी में भी सुगमता से मार्ग बना देता था। चौथा अस्त्र 'दुलर्भ नौका' जो भयंकर लहरों के वेग में भी सबको पार करती थी। पाँचवा अस्त्र 'कांकिणी रत्न' जो गहन अन्धकार को हरके सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशमयी बनाता था। भरत ने इन सभी अस्त्र-शस्त्रों को अपनी उग्र तपस्या से प्राप्त किया था। यही कारण था कि हिन्दुस्तान में कोई राजा उनका सामना न कर सका। परन्तु सत्ता का अहंकार अंधा होता है। भरत ने दुर्गम पहाड़ों-पहाड़ियों पर खुलाई करवा कर सब पर्वत मालाओं पर अपनी यश गाथा लिखवानी शुरू कर दी।

इधर बाहुबली बड़े भाई भरत की प्रसिद्धि व उपलब्धियों पर अति प्रसन्न थे परन्तु उनके बढ़ते अभिमान को लेकर चिंतित भी थे। सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके जब भरतजी अयोध्या लौटे तो उनके आगे-आगे रथ पर 'चक्ररत्न' भी चल रहा था। आश्चर्य ! चक्ररत्न अयोध्या के द्वार पर ही रुक गया। लाख प्रयत्न किये गये परन्तु वह रथ जिस पर 'चक्ररत्न' था, आगे नही बढ़ाया जा सका। चक्र ह्रदय की बात जानता था। वह जान गया कि भरत से अधिक पराक्रमी उसका छोटा भाई बाहुबली है। भरत जान गया कि चक्र झूठा नहीं हो सकता। इस विशाल साम्राज्य में अवश्य ही कोई मुझसे अधिक शक्तिमान है। भरत को मानसिक आघात लगा तथा उसने बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी को बुलाया। ज्योतिषी की गणना सही निकली थी उन्होंने निर्भय होकर भरतजी से कहा कि आपके अपने साम्राज्य में आपके भाई ही यशस्वी व पूर्ण तपस्वी हैं। निन्यानवे भाई तो आपकी आधीनता स्वीकार करके आपको प्रणाम भी कर गये परन्तु बाहुबली अभी तक नमन करने नहीं आया। अतः मेरी दृष्टि तो आपसे अधिक सामर्थ्यवान होने में बाहुबली पर ही जाती है।

सत्ता के झूठे मद में चूर भरत ने बाहुबली को बुलवाया। बाहुबली भी बड़े भाई का अभिमान चूर करने का मन बना चुके थे। भरत ने दुराभिमान में अन्धे होकर पौढ़नपुरा पर चढ़ाई करने की आज्ञा अपनी सेना को तुरन्त दे दी। इधर राजमहल से आकर बाहुबली ने बड़े भैया भरत को प्रणाम किया परन्तु भरत क्रोध में अन्धे हो रहे थे। अतः युद्ध के अलावा कोई बात स्वीकार न की। बाहुबली ने भाई से कहा कि आपको मुझ पर शक है तो मुझसे ही युद्ध करो, सेना व प्रजा की बलि मत दो।

दोनों भाइयों में 'द्वन्द्व युद्ध' आरम्भ हो गया। भरत ने बाहुबली पर चक्ररत्न फेंका तो चक्र

बाहुबली की प्रदक्षिणा करके अपने स्थान पर लौट गया। प्रथम हार भी भरत का अभिमान न तोड़ सकी। दूसरा युद्ध 'धर्मयुद्ध' था। दोनों भाई पलक झपकाये बिना एक दूसरे को देखते रहे। भरत की दृष्टि भाई के सामने पहले झपक गयी। दूसरी पराजय पर भी भरत का अभिमान हल्का नहीं हुआ। तीसरा युद्ध 'मल्लयुद्ध' था। लड़ते–लड़ते बाहुबली ने भरत को अपने सिर से ऊँचा उठा लिया परन्तु भाई को मृत्यु न आ जाये, अतः धरती पर पटका नहीं, धीमे से धरती पर खड़ा कर दिया। तीनों युद्ध में बुरी तरह परास्त होने पर भरत का मन और शरीर ईर्ष्या व क्रोध से झुलस पड़ा।

भरत की दुर्दशा को देख बाहुबली समझ गये कि भाई भरत का घमण्ड का नशा अभी तक नहीं उतरा। अतः मन ने झकझोरा कि ऐसा राज्य किस काम का जो मद में अंधा कर दे तथा दूसरे की दृष्टि भी खराब करे। ये राजकाज न मेरे साथ जायेगा न भाई भरत के। अतः बाहुबली भरतजी के चरणों में लिपट गये और बोले "भैया ! मुझे राज्य की कोई चाह नहीं है, फिर क्यों न अपना राज आपको दे दूँ। मैंने आपको ठेस पहुँचाई, मेरे कारण आपको अपमानित होना पड़ा। मैं अब तपस्या के लिये जा रहा हूँ जिससे प्रायश्चित भी कर सकूँ और ईश्वर भी पा सकूँ।"

भरत छोटे भाई के आगे पानी–पानी हो गये। उन्होंने क्षमा माँगी कि "मैं ही गलत था, नशे में अन्धा था। तुमने मेरी आँखें खोल दी। मुझे त्यागने का दण्ड मुझे न दो।" बाहुबली ज्ञानी थे, राग–द्वेष से ऊपर उठे हुए थे। बोले, "भैया ! आपका अभिमान टूट गया, मुझे अपार प्रसन्नता हुई। मुझे तो बहुत पहले जाना था। आपका अभिमान तोड़ने के लिए ही रुका हुआ था। मेरा पौदनपुरा राज्य भार भी संभालो।"

इतना कहकर बाहुबली सन्यास लेने की दीक्षा हेतु पिता ऋषभनाथ के पास चले गये। संन्यास लेकर बाहुबली जंगलों में तपस्या रत हो गये। जिस जंगल में बाहुबली तपस्या में लीन थे, वह भरत जी के क्षेत्र में ही था।

निर्जन जंगलों में बाहुबली ने झाड़ियों–झखारों के बीच खड़े होकर घोर तपस्या की। तपस्या करते–करते ऋषि बाहुबली के ऊपर मिट्टी व तिनकों–पत्तियों के ढेर जमा हो गये। उस मिट्टी के ढेर में दीमकों ने कतारबद्ध अपनी बांबियाँ (घर) बना डाले। उसी ढेर में सर्पों ने भी अपने बिल बना लिये। वाह रे भरत के मनस्वी–तपस्वी ! तुम्हें कोटि–कोटि श्रद्धायुक्त नतमस्तक प्रणाम। कैसी कठोर साधना ? ऐसी घनघोर उग्र तपस्या का दृष्टान्त भला कहाँ ? शरीर सूखकर काँटा हो गया था। ध्याननिद्रा प्रगाढ़ अवस्था में थी।

बरसों हो गये थे बाहुबली को पौदनपुरा से निकले हुए। अतः भ्रात–प्रेम भाई–भरत के हृदय में छलक–छलक कर उनसे मिलने की व्याकुलता बढ़ा देता था। अपने खोजी दलों को भेज–भेजकर भरतजी थक चुके थे। परन्तु बाहुबली कहाँ चले गये ? किस हाल में हैं ?, इस बात का कहीं से कोई सुराग न मिला था। अन्त में बड़े भाई से रहा न गया और छोटे भाई के

प्रेम में बेचैन हो स्वयं ही खोजी दलों के साथ राज–काज छोड़कर निकल पड़े। सैनिकों ने पर्वत के चप्पे–चप्पे को छान डाला था। सम्राट भरत निराश होकर पर्वतों, जंगलों की खाक छानते हुए वापस लौट ही रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि चींटियों और दीमकों तथा सर्पों की बाँबी पर जा टिकी। सर्प बिलों में से झाँक रहे थे। निस्तब्ध मानव रहित स्थान पर बाँबी में से श्वास की सांय–सांय की हल्की सी ध्वनि सुनाई दी। निकट आकर कान लगाकर आहट लेने का प्रयत्न किया तो लगा मानों कोई मानव लम्बे–लम्बे श्वास ले रहा है। बाँबी का नीचे का भाग थोड़ा खुला था, वह लताओं–गुल्मों से पूरी तरह ढका हुआ था। भरत जी ने खोजी सेना को बड़ी सावधानी के साथ झाड़ियों की कटाई–सफाई का आदेश दिया। अपने छोटे भाई बाहुबली को समाधिस्थ अवस्था में खड़े तपस्या रत देख भाई भरत भौचक्के रह गये। भीमकाय शरीर काँटा बन गया था। वस्त्रों का भी भान न था। अपने देह को अस्तित्व को भी भूल गये थे बाहुबली। केवल वायु भक्षण करके जीवित थे। उनके केशों में पक्षियों ने अपने घोंसले बना रखे थे। सर्प उनका आभूषण थे। असह्य गर्मी, वर्षा, तूफान, आँधी सब कुछ सहकर कठोर साधना करके स्थित–प्रज्ञावस्था प्राप्त कर ली थी।

परन्तु इतनी उग्र तपस्या पर भी ईश्वर का हृदय न पसीजा। पता नहीं क्या विकार रह गया था उनमें ? जिस मुक्ति के लिए राज–पाठ सब छोड़ा, साधना के पथ पर विश्राम एक पल का भी न ग्रहण किया, मुक्ति का पूरा बोध अब तक क्यों प्राप्त न हुआ ? भरत जी घुटने टेक बाहुबली के चरणों में लिपटे बैठे रहे परन्तु बाहुबली की समाधि भंग न हुई। भाई भरत विचलित हो गये और बिलखकर रो पड़े और अपने पिता श्री ऋषभनाथ जी के पास आये। भरतजी ने पिता से भाई बाहुबली की कठोर तपस्या, समाधि अवस्था तथा फिर भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होने की सभी गाथा सुनाई तथा मार्गदर्शन चाहा।

मुनि ऋषभनाथ ध्यानस्थ हो गये। सहसा उनकी आँखें खुली और उन्होंने भरत से कहा कि "यह सत्य है कि बाहुबली कठोर तपस्या में रत है, ऐसी साधना करने वाले विरले ही मिल पायेंगे ! किन्तु वह अभी भी अपने से पूर्णतया अलग नहीं है। खड़ा–खड़ा इसी विचार को लिये हुए है कि जिस भूमि पर मैं तपस्या कर रहा हूँ, वह बड़े भाई भरत की है। अभी भी अपने–पराये में उसका मन अटका हुआ है। जब तक वह इस विचार के संस्कार से मुक्त नहीं हो जाता तब तक कैवल्य भाव (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह अभी तक इस भाव में नहीं आया कि सारी सृष्टि भगवान की है। उसका यह संस्कार तुम्हारे द्वारा नष्ट होगा और उसे शीघ्र ही मोक्ष मिलने वाला है।" इतना कहकर श्री ऋषभनाथ मुनि जी चुप हो गये और समाधि अवस्था में लीन हो गये।

भरतजी ने पिता श्री ऋषभनाथ जी के चरण चूमें और छोटे भाई बाहुबली के श्री चरणों में आ गये। सम्राट भरत से छोटे भाई का कद बहुत ऊँचा उठ गया था। बड़े भाई ने छोटे भाई की चरण वन्दना करके प्रभावशाली श्रद्धायुक्त प्रेम भरे वचनों में उच्चारण किया, "भाई ! अपने

मन से यह विचार निकाल दो कि तुम मेरी भूमि पर खड़े हो। यह भूमि तुम्हारी ही है, तुमने ही तो अपनी पौड़नपुरी की राज्यभूमि मुझे दी थी। मैं तो मात्र तुम्हारी थाती की रक्षा कर रहा हूँ। वस्तुतः यह भूमि न मेरी है, न तुम्हारी, सब कुछ परमात्मा की रचना है, फिर मन में यह अटक क्यों ? इस संस्कार को काट दो और भ्रम जाल से मुक्त हो जाओ। निर्विकार भाव में साधना करो।"

बड़े भाई के ये शब्द सुनते–सुनते बाहुबली असम्प्रज्ञात (निर्बीज समाधि) समाधि में उतर गये। अपने पराये के भाव से ऊपर उठ गये। प्रकाश वलय के प्रभा मण्डल से उनका मुखड़ा देदीप्यमान हो उठा। आवागमन के चक्र से मुक्त हो गये। सम्पूर्ण विश्व में संतों की श्रेणी में उनका नाम गूँज उठा। किसी ने सही कहा है–

कुछ किये बिना जग में, जय-जयकार नहीं होती।
हिम्मत करने वालों की, कभी हार नहीं होती।।

उपर्युक्त कथा प्रसंग में तीन संस्कार इस प्रकार उभर कर सामने आते हैं जिनके द्वारा बात अधिक सरलता से समझ में आ जायेगी कि वस्तुतः ये संस्कार ही हैं जो मुक्ति में बाधक हैं तथा एक भी संस्कार के शेष रहने पर मुक्ति का द्वार सामने होने पर भी मुक्ति हाथ नहीं लगती।

बाहुबली के मन में भाई की भूमि का विचार भी इसलिए आया कि उन्होंने एक प्रकार से अपना राज्यखण्ड बड़े भाई को दान कर दिया। उसी भूमि पर तप करना उन्हें पापवृत्ति सा भास रहा था। सन्यास लेने के पश्चात बाहुबली ऋषियों मुनियों की सेवा करते रहे, पशु–पक्षियों की सेवा करते रहे और साधना करते रहे। परन्तु हर समय यही विचार रहता था कि मैं भाई की भूमि पर चल रहा हूँ, सेवा कर रहा हूँ। अतः इसी विचार ने इतना गहरा संस्कार बनाया कि सम्प्रज्ञात समाधि में भी इस भाव से ग्रसित रहे। एक फकीर के लिए अपना सर्वस्व श्री परमात्मा का होता है तथा दूसरे का भी। वह उसी परमेश्वर के लिए रहता, खाता, सोता है। मेरे–तेरे के भेद से ऊपर उठकर **"ईसावास्यमिदम् सर्वम् यत्किंचित् जगत्याम्जगत्"** प्रभु इस जग के कण–कण में विद्यमान है तथा कण–कण भगवान का है, इस भाव में रहना पड़ता है। अतः मात्र एक विचार ने ऐसा संस्कार बनाया कि बाहुबली मुक्ति के द्वार पर भी मुक्ति से खाली थे। विचार ने किसी क्रिया का रूप नहीं लिया था। अतः यह भूमि न मेरी है न भाई भरत की, सब कुछ परमेश्वर का है, इस भाव ने संस्कार काट दिया और बाहुबली निर्बीज समाधि में स्थित हो गये।

अतः एक भी संस्कार जब तक शेष है तब तक कैवल्य लाभ नहीं। अब विशेष ध्यान देने योग्य विषय है कि यदि विचार मन में ही है तब तो दूसरे विचार से पहले वाले का संस्कार तुरन्त कट जायेगा। परन्तु यदि विचारों ने कार्यों का रूप ले लिया तो संस्कार भुगतान लम्बा चल सकता है। भरत के मन में विचार आया कि मैंने तपस्या के बल पर **'पंचरत्न अस्त्र-शस्त्र'** प्राप्त किये हैं, अतः अब मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस विचार के मन में अधिक समय रहने पर संस्कार श्रृंखला चल पड़ी।

एक संस्कार दूसरे संस्कारों का जन्मदाता है–गुरुवाणी

जब मेरे जैसा कोई शक्तिशाली ही नहीं है तो यह बात सबको मालूम होनी चाहिये कि इस विचार ने जन्म लिया, फिर क्यों न सभी राजा–महाराजाओं को शक्ति का परिचय दूँ, इस विचार ने जन्म लिया और तीन चार विचारों ने एक ऐसा संस्कार चक्र चलाया कि ऋषभनन्दन भरत कर्म श्रृंखला में जकड़ते चले गये और अहंकार का वृक्ष हृदय में खड़ा हो गया। एक विचार ने कितना बड़ा कुसंस्कारी बना दिया कि हिंसा व रक्तपात चारों ओर फैल गया।

तीसरा संस्कार अधिक प्रभाव में जब दृष्टिगोचर होता है तब बाहुबली ने तीनों युद्धों में भाई भरत को परास्त कर दिया तब भी भरत के मन में जो विचार था कि मैं ही सबसे शक्तिशाली हूँ, ये संस्कार हटा नहीं। जब सामने खड़े प्रतिद्वन्द्वी ने राज्य व मान दोनों बड़े भाई को अर्पित करके गुनहगार न होते हुए भी गुनहगारों की तरह क्षमा माँगी और जिस शक्ति व राज्य के मद में बड़ा भाई था, उसे अपनी भी शक्ति व राज्य चुटकी (पलभर) में सौंप दिया तब जाकर भरत को गहरा मानसिक आघात लगा कि जिस सम्पदा के लिए तप–त्याग व युद्ध किये, बाहुबली की दृष्टि में तो ये सब तुच्छ है, अतः भैया बाहुबली ही मुझसे हर प्रकार के (शरीरबल, तपोबल व मनोबल) बल में श्रेष्ठ है। तब कहीं जाकर तुलनात्मक संस्कार से मुक्त हुए। अतः एक–एक संस्कार अपना प्रभाव इस चित्त पर डालता है। बड़े भाई का शक्तिशाली होने का तुलनात्मक संस्कार उनके समता व सरलता के आड़े आ रहा था। छोटे भाई का भावात्मक संस्कार उनकी मुक्ति कैं आड़े आ रहा था।

अतः संस्कारों का विज्ञान कभी भी महत्वहीन नहीं हो सकता। हमें विपरीत परिस्थितियों में भी सुसंस्कारी ही बनना चाहिये और न ही दूसरों को संस्कार बिगाड़ने में प्रेरित करने चाहिये। संस्कार की छाप बाल्यावस्था से ही चित्त पर छाप डालती रहती है इसलिए माता–पिता का सुसंस्कारी होना अति आवश्यक है। माता–पिता से मिले सुसंस्कार साधना पथ में सहायक होते हैं। यथा–**मातृवान-पितृवान आचार्यवान्हि पुरुषोवेदः**–माता–पिता और गुरु इन तीनों की सेवा करने वाला परमात्मा को पा लेता है। प्रथम गुरु माँ, द्वितीय गुरु पिता तथा सद्गुरु ये तीनों ही उत्तम संस्कारवान होने चाहिये। परन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि प्रथम व द्वितीय गुरु (माता–पिता) बच्चे को दोनों ही आजकल अधिक मात्रा में कुसंस्कारी मिलते हैं। खाने–पीने, सोने–जागने, उठने–बैठने, धर्म–कर्म सभी विषयों में इतनी विषैली प्रणाली आधुनिक माता–पिता ने अपना रखी है कि स्वयं भी नरक के गरक की ओर बढ़ रहे हैं और बच्चे की मस्तिष्क की झोली में भी यह दुर्गतिपूर्ण थाली डाल रहे हैं। सोकर ढंग से उठते भी नहीं कि बिस्तर पर चाय चाहिये, घर में पूजा–पाठ का नाम नहीं, टेलिफोन पर यहाँ–वहाँ की गप्पे चाहिये। खाना खाने का नियम व समय ठीक नहीं, माता की खाना बनाने में रुचि नहीं, रेडिमेड नाश्ता मँगाया जाता है उसमें ब्रेड या ब्रेडरोल पेटीज (जिसमें सूखे आलू तेज मसाला भरा जाता है) समोसा आदि इस तरह की चीजें सुबह नाश्ते में मँगाई जाती हैं। माता–पिता ने स्वयं खाई तथा बच्चों को

खिलाई तभी तो उन्हें इन सबके स्वाद का पता चला। बाजार में जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन पर कितनी मक्खी व मच्छर बैठकर उन्हें गन्दा कर जाते हैं, कितने जले–भुने व सड़े हुए तेल में ये वस्तुएँ तली जाती हैं इसका अन्दाज लगाओगे तो खाना तो दूर रहा, देखने को भी मन नहीं करेगा। बाजार में बच्चों को लेकर खरीदारी करने का मन बना तो घर के चूल्हे को ठण्डा करके होटल में बच्चों के साथ भोजन करेंगे। भोजन का घर का भी नियम नहीं। रात के कितने भी बजे हों, टेलिविजन देखते रहेंगे, वी०सी०आर० चलाते रहेंगे और खाते रहेंगे। वस्त्र स्वयं भी अटपटे पहनेंगे और बच्चों को भी अर्धनग्नधारी वस्त्र पहनायेंगे। स्वयं भी नॉविल, अखबार में उलझे रहेंगे,बच्चों को भी वीडियो गेम आदि देकर उलझायेंगे। हर क्षेत्र में आधुनिक विचार–धारा के माता–पिता ने इस प्रकार की संस्कृति अपना ली कि बच्चे बेचारे बाल्यकाल से ही गुमराह व मतिभ्रम से रहते हैं। ढंग के माता–पिता मिलना अर्थात् (सुसंस्कारी माता–पिता) आज की पीढ़ी में कितना दुर्लभ हो गया है। पिता पुत्र व पुत्री के सामने शराब पीता है या पीकर आता है। जब रिटायरमेंट हो जाता है तो घर के बाहर कुछ बुर्जुग बैठ जायेंगे व ताश की महफिल जमेगी। बच्चा स्कूल से आया नहीं, कि माँ किटि पार्टी में मिलती है। घर में भगवान के चित्र न होकर फिल्मी स्टारों व क्रिकेट स्टारों के बड़े–बड़े पोस्टर मिलेंगे। शाम को भी भगवान के आगे दीपक जलना है, परवाह नहीं। सन्ध्या वेला में व भोर वेला में क्या करना उत्तम है पता नहीं, शुद्धि क्या होती है पता नहीं। सुबह–सुबह घर में झाडू–बुहारी करनी है पता नहीं, नौकर आयेगा तो सफाई होगी ना आया तो १२ बजे के बाद होगी। बर्तन साफ करने वाली आयी तो साफ हो जायेंगे वो भी सुबह के बर्तन शाम को व शाम और रात के बर्तन सुबह को, काम वाली न आयी तो सुबह–शाम दोनों समय नहीं साफ होंगे, एक–दो दिन बाद साफ होंगे। सिंक में पड़े–पड़े बर्तन सड़ते रहेंगे, बदबू सहते रहेंगे, जिस बर्तन की जरूरत पड़ी साफ कर लिया बाकी सिंक में पड़ा रहा। कपड़े कई–कई दिन के मशीन में (Washing Machine) पड़े दुर्गन्ध फैलाते रहेंगे। रविवार वाले दिन तो और भी अधिक बुरा हाल अर्थात् आज छुट्टी का दिन है, रोज तो बच्चों को, पति को स्कूल या ऑफिस भेजने के लिए समय से उठना भी हो जाता था, उस दिन दो–अढ़ाई घण्टा विलम्ब से उठेंगे, स्नान दोपहर में, स्नान से पहले चाय पकौड़ा बिस्तर में, बच्चे सारे दिन टी०वी० के सामने, दोपहर के भोजन का समय चार या पाँच बजे और शाम का भोजन मित्र के, रिश्तेदार के यहाँ या फिर होटल में। सब्जी मण्डी में जाकर पूछो कि भैया इतनी सब्जी रोज मण्डी में बच जाती है, कुछ छँटाव की, कुछ सड़ाव की, कुछ बासी क्या करते हो। इन सबको ? क्या फेंक देते हो ? उत्तर मिलेगा, जी नहीं, होटल वाले सस्ते दाम पर रोज शाम को अन्धेरे में आकर खरीद ले जाते हैं, हर हाल में पड़ा सामान बिक जाता है। यह बात अन्दाज से नहीं कही जा रही है, हकीकत लिखी जा रही है। बाहर पुरुषों का घर से निकलकर क्या हाल है, लिखूँ तो हैरानी होती है। कालाबाजारी, रिश्वत, होड़ आदि ने मस्तिष्क में ऐसा जाल बना रखा है कि नाजायज काम में भी हिचकिचाहट नहीं। झूठ–फरेब, धोखा–

घड़ी की हाय तोबा मची हुई है। क्या संस्कार देंगे ऐसे माता–पिता अपने बच्चों को। घर व बाहर का इतना कुसंस्कारी वातावरण बनाया हुआ है कि परमात्मा संस्कारी आत्मा को कैसे भेजेगा इन परिवारों में। दुर्लभ मानव जन्म को बिना कौड़ी भी बेचने को तैयार। ऐसा लगता है कि चार्वाक दर्शन की येन–केन और रात के बर्तन सुबह को, काम वाली नकारेण अमल में तो ये ही ला रहे हैं, जिस दर्शन का सूत्र है–

भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः।
यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।।

–चार्वाक दर्शन

अर्थात् जब तक जिओ, सुखपूर्वक जिओ, न हो तो कर्जा लेकर भी घी पीओ, ये देह तो भस्म हो जायेगी, कौन जाने पुनरागमन होगा भी कि नहीं।

ऐसे चार्वाक दर्शन को नास्तिक दर्शन की संज्ञा मिली और दर्शनशास्त्रियों ने, ऋषियों–महर्षियों ने इस देश में पनपने नहीं दिया इस दर्शन को। परन्तु आज जड़ सहित यह दर्शन फलफूल रहा है। तो बताइये नास्तिक दर्शन में रमें ऐसे कुसंस्कारी माता–पिता अपनी सन्तान को क्या संस्कार देंगे जिनकी नैया खुद ही हमेशा के लिए अधर में घूम रही है।

जिन लोगों ने जान-बूझकर खुद ही करी हवाले।
उन लोगों की नाव भँवर से बोलो कौन निकाले ?

–विजय निर्बाध

क्रमशः

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनःपुनः।।

–चाणक्यनीति दर्पण

धन, मित्र, पत्नी और यह जगत (सम्पदा, देश, राज्य आदि) तो बार–बार मिल सकते हैं पर मनुष्य शरीर बार–बार नहीं मिलता। बल्कि अनेक योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि मिलती है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य शरीर का सदुपयोग कर शुभ कर्म और धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए।

अणोरणीयान् महतो महीयान्

बीरबल असमंजस में थे कि बादशाह के इन प्रश्नों कि "तुम्हारा ईश्वर कहाँ रहता है ? कैसे उसके दर्शन हो सकते हैं और यदि वह है तो वह क्या–क्या कर सकता है ?" का क्या जवाब है। नदी तट पर चिन्तित घूमते बीरबल की चिन्ता का कारण जानकर ग्वाले के एक लड़के ने उसे बादशाह के सन्मुख उपस्थित करने का आग्रह किया। अगले दिन बीरबल उस बालक को लेकर शहंशाह अकबर के सामने पहुँच गये और बोले यह लड़का आपके प्रश्नों के उत्तर देगा। इतने कठिन प्रश्नों का उत्तर देगा यह बालक ! मन में ऐसा सोचते हुए बादशाह ने लड़के से उत्तर देने को कहा। लड़के ने कहा कि 'जिससे हम कुछ जानना चाहते हैं', उसका हमें सत्कार करना चाहिये। 'आपको भी मेरा सत्कार करना चाहिये। बालक के कहने पर राजा ने उसके लिए दूध मंगवाया। बालक ने कटोरा लेकर उसके अंदर झाँका। इधर–उधर से कटोरे को देखा, फिर अंगुली डालकर उसमें कोई वस्तु खोजने लगा। देर होते देख बादशाह ने कहा कि, बालक दूध पीते क्यों नहीं' ? लड़के ने कहा कि मैंने सुना है कि दूध में मक्खन होता है, परन्तु इसमें तो कहीं मक्खन दिखलाई नहीं देता, अंगुली डालकर उसे ही खोज रहा हूँ। बादशाह ने हंसते हुए कहा कि– बालक तुम इतना भी नहीं जानते कि मक्खन तो इसमें अवश्य है, उसे देखना हो तो दूध को दही डालकर जमाना पड़ता है, दही बन जाये तो उसे मथनी से मथना पड़ता है, बिलोना पड़ता है। तब मक्खन ऊपर आता है।"

बच्चे ने तपाक से कहा कि सुनो 'बादशाह ! तुम्हारे पहले दो सवालों का जबाव यही है। ईश्वर है सब जगह ! संसार के कण–कण में उसकी सत्ता है। क्या इस विश्व की रचना में उस विराट प्रभु का हाथ दिखाई नहीं देता जिनका एक –एक नियम अटूट और अविचल है। जिसकी व्यवस्था अचम्भे में डालती है, जिसका न्याय अक्षुण्ण और अपूर्व है। संसार की छोटी–बड़ी सभी गतिविधियों का नियन्ता वही एक परमेश्वर है। परन्तु याद रखें बादशाह ! जब मन को प्रभु नाम का दही डालकर जमाया जाता है और उसे धारणा, ध्यान तथा समाधि की मथनी से बिलोया जाता है तब भक्त अपने हृदय में भगवत् दर्शन करता है।

बालक के इस तात्विक विश्लेषण से विस्मित बादशाह ने अपने तीसरे प्रश्न "वह क्या कर सकता है ?" का भी उत्तर जानना चाहा। बालक ने कहा—यह प्रश्न आप गुरु बनकर पूछते हैं या शिष्य बनकर ? बादशाह ने कहा कि शिष्य बनकर।" बालक ने कहा कि अद्‌भुत शिष्य हो तुम, गुरु नीचे पृथ्वी पर खड़ा है और तुम ऊपर तख्त पर विराजमान हो। गुरु की महिमा महान् है। उसका आसन ऊँचा है।" यह सुनकर बादशाह नीचे उतर आया और लड़के को सिंहासन पर बैठाया। और हाथ जोड़कर बोला 'अब बताओ ईश्वर क्या करता है ?'

बालक हँसकर बोला—वह परमेश्वर यही करता है कि एक दरिद्र ग्वाले के लड़के को सिंहासन पर बैठाता है। और बड़े–बड़े सम्राटों को नीचे उतार देता है। बहुत शक्तिशाली है वह प्रभु ! महान–से महान है और सूक्ष्म से सूक्ष्म–अणोरणीयाम् महतो महीयान्।

***

SIDDHYOG Regd. No. ...

PRINTED MATTER
BOOK-POST

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक सत्प्रकाटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

146

श्री Jaya Karan Agrawal, Khoradia Bhawan, Lower Rajwari Road, JHARIA (Jh.K.) 828 111

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावा-ज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।८।।

अर्थात्, विनाशशील जड़वर्ग, जिसे भगवान् की अपरा प्रकृति तथा क्षर-तत्त्व कहा गया है और भगवान् की परा प्रकृति रूप जीवसमुदाय, जो अक्षरतत्त्व के नाम से पुकारा जाता है—इन दोनों के संयोग से बने हुए, प्रकट (स्थूल)और अप्रकट (सूक्ष्म) रूप में स्थित इस समस्त जगत् को वे परम पुरुष पुरुषोत्तम ही धारण-पोषण करते हैं, जो सबके स्वामी, सबके प्रेरक तथा सबका यथायोग्य संचालन और नियमन करने वाले परमेश्वर हैं। जीवात्मा इस जगत् के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन हो इसके मोहजाल में फँसा रहता है, उन परमदेव परमात्मा की ओर दृष्टिपात नहीं करता। जब कभी वह उन सर्वसुहृद् परमात्मा की अहैतुकी दया से महापुरुषों का संग पाकर उनको जानने का अभिलाषी होकर पूर्ण चेष्टा करता है, तब उन परमदेव परमेश्वर को जानकर सब प्रकार के बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है।।८।।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326
सम्पादक–आचार्य डॉ० (डा.) [illegible] शर्मा